भूमंडलीय पूंजीवाद के विरुद्ध आलोचनात्मक शिक्षा

कार्ल मार्क्स और क्रांतिकारी आलोचनात्मक शिक्षा

पाओला आलमान

अनुवादक

विभांशु दिव्याल

भूमंडलीय पूंजीवाद के विरुद्ध आलोचनात्मक शिक्षा

भूमंडलीय पूंजीवाद के विरुद्ध आलोचनात्मक शिक्षा

कार्ल मार्क्स और क्रांतिकारी आलोचनात्मक शिक्षा

पाओला आलमान

अनुवादक

विभांशु दिव्याल

क्रिस और डेनियल, ब्रेट, ब्रान्देन और जिम के लिए

विषयानुक्रम

शृंखला प्राक्कथन
9

प्राक्कथन
15

आभार
33

प्रस्तावना
37

अध्याय एक
भूमंडलीय पूंजी और मानवीय स्थिति
नई सहस्राब्दी के शुरू करने का बेहूदा तरीका
57

अध्याय दो
पूंजीवाद के अतर्य का उद्घाटन
सामान्य पण्य से भूमंडलीय सामाजिक आधिपत्य तक · पूंजीवाद, भाग 1
84

अध्याय तीन
अतर्य से आविर्भाव तक · पूंजीवाद, भाग 2
164

अध्याय चार
बस, बहुत हो गया !
नई सदी में पूंजीवाद को चुनौती
227

अध्याय पांच
क्रांतिकारी सामाजिक रूपांतरण के लिए आलोचनात्मक शिक्षा
269

अध्याय छह
फ्रेरेवादी आलोचनात्मक शिक्षा एक संभाव्य संदर्भ में
308

अध्याय सात
विसंगति के उन्मूलन की ओर :
पूंजीवाद को 'नहीं' कहना
353

आगे अध्ययन की सामग्री
395

अनुक्रमणिका
403

श्रृंखला प्राक्कथन

शैक्षिक सुधार कठिन दौर से गुजर रहा है। वह पारंपरिक मान्यता नष्ट कर दी गई है कि शिक्षण मूल रूप से नागरिकता की उन अनिवार्यताओं मे जुड़ा है जिनकी परिकल्पना छात्रों को नागर नेतृत्व और मार्वजनिक दायित्व निभाने में सक्षम बनाने के लिए की गई थी। विद्यालय अब ऐसे व्यावसायिकों, तकनीकी तौर पर प्रशिक्षित, कुशल कर्मियों के उत्पादन के केंद्र बन गए हैं जिनके लिए बाजार और सार्वजनिक वाणिज्यिक क्षेत्र के हेर-फेर अधिक महत्वपूर्ण हैं बजाए नागरिकता की मांगों के। सार्वजनिक और उच्च शिक्षा का मौजूदा कारपोरेट और दक्षिणपंथी हमले के कारण, और एक ऐसे नैतिक और राजनीतिक वातावरण के उभार आने के साथ जो एक नए मामाजिक डार्विनवाद की ओर प्रवृत्त है, जो उस लोकतांत्रिक अर्थ, उद्देश्य और प्रयोग की संरचना करते थे जिसके लिए शिक्षा लक्षित थी वे विषय अब अधिक व्यावसायिक और संकुचित विचारधारात्मक चिंतन द्वारा विस्थापित कर दिए गए हैं।

वास्तविक लोकतंत्र की अवधारणाओं से जुड़ी शिक्षा की संभावनाओं के विरुद्ध शुरू की गई लड़ाई महज विचारधारात्मक नहीं है। सार्वजनिक शिक्षा के लिए धन की कटौती, निजीकरण, सांस्कृतिक एकरूपता, और चयन आदि की बढ़ती मांग की पृष्ठभूमि के विरुद्ध भौतिक शक्ति और दमन की व्यापक सामाजिक वास्तविकताएं दिखाई देती हैं जो पूरी तरह उपेक्षित हैं। राष्ट्रीय स्तर पर, जातीय आग्रहों का विराट उभार दिखाई देता है। कैलीफोर्निया में 'प्रपांजीशन 187' जैसे प्रव्रजन विरोधी कानूनों को पारित करना, कल्याणकारी राज्य को समाप्त करना, काले युवकों का पैशाचीकरण करना जो लगातार लोकप्रिय मीडिया में परिलक्षित हो रहा है, और जातीय भेद की ऐसी चर्चाओं पर मीडिया का जरूरत से ज्यादा ध्यान जो काले लोगों की बौद्धिक हीनता का तर्क प्रस्तुत करती हैं या जातीय न्याय की आवाजों को 1960 के दशक की 'नैतिक तौर पर दिवालिया' विरासत का अवांछित ठहराव बताकर खारिज करती हैं।

अमरीका मे बच्चों की गरीबी लगातार बढ़ रही है 18 वर्ष के कम आयु के कुल बच्चों में से 20 प्रतिशत गरीबी की रेखा से नीचे का जीवन जी रहे हैं। गरीब काले युवकों में बेरोजगारी खतरनाक दर से बढ़ रही है, खास तौर पर शहरी इलाकों में। एक ओर काले युवकों की पुलिस-निगरानी और उन्हें अनुशासित रखने के काम

देश के स्कूलों के बाहर हो रहे हैं तो दूसरी ओर रूढ़िवादी और उदारवादी शिक्षाशास्त्री शिक्षा को निजीकरण राष्ट्रीय मानक और भूमंडलीय प्रतिद्वंद्विता की निर्जीव परिचर्चाओं के माध्यम में परिभाषित कर रहे हैं।

आलोचनात्मक शिक्षा परंपरा के बहुत से लेखकों ने अमरीका और उसके बाहर शैक्षिक और सामाजिक सुधारों के पीछे के दक्षिणपंथी रूढ़िवाद को चुनौती देने का प्रयास किया है और साथ ही शिक्षा और लोकतंत्र के बारे में उस जनसंवाद के नीतिपरक रास्ते भी सुझाए हैं जो भविष्यसूचक और रूपांतरणकारी दोनों ही हैं। पारंपरिक श्रेणियों को परे खिसकाकर, अनेकानेक आलोचनात्मक सिद्धांतशास्त्रियों और शिक्षाशास्त्रियों ने उस सनकीपन और निराशा के तत्व के राजनीतिक और नैतिक निहितार्थों का सफलता से खुलासा किया है जो आज स्कूली शिक्षण और नागरिक जीवन संबंधी संवादों में गहराई तक पैठ गया है। इसके स्थान पर ये शिक्षाशास्त्री उम्मीद की ऐसी भाषा उपलब्ध कराने का प्रयास कर रहे हैं जो स्कूली शिक्षा को अनिवार्य तौर पर हमारे वर्तमान सामाजिक और सांस्कृतिक खतरों को समझने और उन्हें रूपांतरित करने से जोड़ते हैं।

अति साधारणीकरण का खतरा उठाकर भी सांस्कृतिक अध्ययन सिद्धांतकार और आलोचनात्मक शिक्षक दोनों ही ने संदर्भों और सत्ता में हस्तक्षेप के ठोस आधार के रूप में 'सिद्धांत को समझने के महत्व पर बल दिया है ताकि लोगों को इस तरह अधिक रणनीतिक तौर पर सक्रिय होने के लिए तैयार किया जा सके कि वे बेहतरी के लिए अपने संदर्भों को बदल सकें।" इसके अलावा, दोनों ही क्षेत्रों के सिद्धांतकारों ने 'राजनीतिक' के महत्व पर बल दिया है और ऐसे आलोचनात्मक जनसंवाद क्षेत्रों (क्रिटिकल पब्लिक स्पेसेज) की आवश्यकता या उसके लिए संघर्ष करने की आवश्यकता दरशाई है, जिनमें 'लोकप्रिय सांस्कृतिक प्रतिरोध को राजनीतिक प्रतिरोध के एक रूप के बतौर देखा जा सके।' भले ही ये क्षेत्र कितने ही अल्पकालिक क्यों न हों। इसके परे भी लेखकों ने उन चुनौतियों का विश्लेषण किया है जिनका सामना शिक्षकों को शिक्षा का एक नया लक्ष्य तय करने में करना पड़ेगा, वह लक्ष्य जो उन बहुशाखीय या विविध आख्यानों को अभिव्यक्ति देने वाले अनुभवों, सरोकारों विविध इतिहासों और भाषाओं का सम्मान करने से जुड़ा हो, जो लोकतंत्र की विरासत से टकराते है और उसे चुनौती हैं।

समान रूप से महत्वपूर्ण हाल के आलोचनात्मक शैक्षिक कार्य की वह अंतर्दृष्टि है जो मतभेद की राजनीति को बहुसांस्कृतिक, बहुजातीय, बहुभाषाई संप्रदायों वाले समुदायों में स्कूली शिक्षा और अर्थव्यवस्था और नागरिकता, और अर्थपूर्ण राजनीति के बीच जटिल संबंधों को संबोधित करने की ठोस रणनीतियों से जोड़ती है।

'शिक्षा और संस्कृति में आलोचनात्मक अध्ययन' (क्रिटिकल स्टडीज इन एजुकेशन एंड कल्चर) यह दिखाने का प्रयास करती है कि सांस्कृतिक अध्ययन और आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र के क्षेत्रों में कार्यरत विद्वान कैसे एक दूसरे के साथ उस मूल परिवर्तनवादी परियोजना और व्यवहार में जुड़ सकते हैं जो सैद्धांतिक तौर पर यथातथ्य विमर्श को बढ़ाता हो, जो आलोचनात्मकता की पुष्टि करता हो मगर सनकीपन को नकारता हो, और जो आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र और राजनीतिक व्यवहार में 'उम्मीद' को केंद्रीय तत्व के रूप में स्थापित करता हो मगर रूमानी सुखलोकवाद से परहेज करता हो। ऐसी परियोजना के लिए केंद्रीय मुद्दा यह है कि शिक्षाशास्त्र सांस्कृतिक अध्ययन सिद्धांतकारों और आलोचनात्मक शिक्षकों को उन शिक्षाशास्त्रीय व्यवहारों में संलग्न होने का अवसर कैसे उपलब्ध कराए जो व्यवहार न केवल अनुशासनपारीय, अतिचारी और विरोधात्मक हैं बल्कि जातीय, आर्थिक और राजनीतिक लोकतंत्र को बढ़ावा देने के लिए निर्मित एक बड़ी परियोजना से भी जुड़े हैं।[3] संस्कृति और सत्ता के बीच संबंधों को गंभीरता से लेकर हम प्रतिरोध, संघर्ष और परिवर्तन की संभावनाओं को बढ़ावा देते हैं।

'शिक्षा और संस्कृति में आलोचनात्मक अध्ययन' ऐसा संवाद गलियारा खोलने के प्रकाशन कार्य से प्रतिबद्ध है जो प्रासंगिक और विशिष्ट की पुष्टि करता है, और साथ ही उन तरीकों की भी पहचान करता है जिनसे ऐसे संवाद गलियारों को सत्ता के विषयों से अलग करने के प्रयास किए जाते हैं। यह शृंखला सांस्कृतिक अध्ययनों में सैद्धांतिक कार्य की महत्वपूर्ण विरासत को जारी रखने का प्रयास करती है, उन सांस्कृतिक अध्ययनों में जिनमें शिक्षाशास्त्र से संबंधित विमर्शों को सामाजिक दायित्व, नागरिक शौर्य और लोकतांत्रिक सार्वजनिक जीवन की पुनर्रचना जैसे व्यापक संदर्भों के भीतर संबोधित किया और समझा जाता है। हमें रेमंड विलियम्स की अंतर्दृष्टि को ध्यान में रखना चाहिए कि 'गहनतम अंत:प्रेरणा या आवेग (सांस्कृतिक राजनीति से संबंधित) स्वयं सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को शिक्षा का एक अंग बनाने की इच्छा है।'[4] सांस्कृतिक शैक्षणिक व्यवहार के रूप में शिक्षा अनेकानेक स्थलों पर घटित होती है, जिनमें केवल स्कूल और विश्वविद्यालय ही शामिल नहीं हैं, बल्कि जनसंचार माध्यम, लोक संस्कृति, और अन्य अनेक सार्वजनिक गतिविधियों के स्थल भी शामिल हैं, और इससे यह संकेत भी मिलता है कि विविध संदर्भों के भीतर, शिक्षा हमें सत्ता के संबंधों का गुलाम भी बनाती है और उन पर निर्भर भी।

यह शृंखला बाजारी मूल्यों की प्रमुखता की वर्तमान वापसी को चुनौती देती है और साथ ही राजनीति से पीछे हटने को भी, जो शैक्षिक सिद्धांतकारों, विधान

निर्माताओं और नीतिक विश्लेषकों की नवीनतम रचनाओं में बहुत ही प्रमुखता मे दिखाई देता है। इस संकटपूर्ण दौर में व्यावसायिक पुनर्वैधीकरण समय के चलन के तौर पर दिखाई देता है क्योंकि लगातार बढ़ती हुई संख्या में विद्वतजन सार्वजनिक और उच्च शिक्षा को सार्वजनिक आलोचनात्मक क्षेत्र मानने से इनकार कर रहे हैं और साथ ही स्कूली शिक्षा के रोजगारीकरण, बौद्धिक श्रमशक्ति के निरंतर क्षरण, और नौकरीपेशा गरीबों, बूढ़ों और औरतों और बच्चों पर लगातार हो रहे हमलों का या तो बिलकुल ही प्रतिरोध नहीं कर रहे हैं, या फिर न के बराबर कर रहे हैं।

राजनीति, संस्कृति और सत्ता की केंद्रीयता पर जोर देते हुए 'शिक्षा और संस्कृति में आलोचनात्मक अध्ययन' उन शिक्षाशास्त्रीय पहलुओं का विवेचन प्रस्तुत करती है जो कल्पनाशील और रूपांतरकारी तरीकों से यह समझने में हमारी मदद करते हैं कि आलोचनात्मक ज्ञान, लोकतांत्रिक मूल्य, और सामाजिक व्यवहार किस तरह से शिक्षकों, छात्रों और अन्य सांस्कृतिक कर्मियो को वह आचार प्रदान करते हैं जिसमे वे सरोकारी और जनबौद्धिकों के रूप में अपनी भूमिका को पुनर्परिभाषित कर सकें। प्रत्येक पुस्तक भाषा और अनुभव, शिक्षाशास्त्र और मानव अभिकरण और नीति और सामाजिक दायित्वो के बीच के सबधों पर बहुजातीय और बहुसांस्कृतिक समाज में लोकतांत्रिक शिक्षण की संभावनाओं में शामिल होने और उन्हें मजबूत बनाने की व्यापक परियोजना के भाग के रूप में पुनर्विचार करने का प्रयास करती है। 'शिक्षा और संस्कृति में आलोचनात्मक अध्ययन' सार्वजनिक शिक्षा और नागरिक जीवन की सर्वाधिक बाध्यकारी या जरूरी समस्याओं की साक्ष्य बनने और उन्हें संबोधित करने की जिम्मेदारी लेती है और संस्कृति को रचनात्मक सामाजिक परिवर्तन के लिए एक निर्णायक क्षेत्र और रणनीतिक शक्ति के बतौर प्रस्तुत करती है।

हेनरी ए. गीरू

थ्योरी पेडागागी-पालिटिक्स : टेक्स्ट फार चेंज (उर्बाना आई एल : यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनास प्रेस, 1992), पृ 10 से ली गई. यहां न तो अनुशासन आधारित ज्ञान की सीमाओं को नकारने का मुद्दा है न सिर्फ विभिन्न अनुशासनों को मिलाने का, बल्कि उन सैद्धांतिक प्रतिमानों, प्रश्नों और ज्ञान की निर्मिति करने का है जिन्हें वर्तमान अनुशासनों की अभिरक्षित सीमाओं के भीतर आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

4. रेमंड विलियम्स, 'अडल्ट एजुकेशन एंड स्पेशल चेंज', *व्हाट आई कम टू से* में (लंदन : हचिंसन राडस, 1989), पृ. 158.
5. 'व्यावसायिक वैधीकरण' पद ईस्ट कैरोलिना यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर जौफ विलियम्स के साथ व्यक्तिगत पत्रव्यवहार में से आया है

प्राक्कथन

अपनी महत्वपूर्ण नई किताब *क्रिटिकल एजुकेशन अगेंस्ट ग्लोबल कैपीटलिज्म* (भूमंडलीय पूंजीवाद के विरुद्ध आलोचनात्मक शिक्षा) पाओला ओलमान, शैक्षिक आलोचना के भविष्य को लेकर बहुत से महत्वपूर्ण सवाल उठाती हैं : किस तरह पूंजीवाद पूरी तरह भूमंडलीय होने में समर्थ हो सका है और ऐसा होने की प्रक्रिया में किस तरह इतना सहज स्वीकार्य हो चुका है कि इस पिशाच की आंतों को चीर बाहर निकलने की बात सोचना तो दूर हम इसके पट को कोंचना तक नहीं चाहते कि यह हमें बाहर उगल दे? हम इस भस्मासुर की चपेट में कैसे आ गए हैं और क्यों हम उसकी अतार्किक और नरभक्षी मांगों को पूरा करते चले जा रहे हैं? क्यों पूंजी और शोषण की इसकी अनंत सीमाएं लगातार फैलती जा रही हैं, और ग्राम्शी की भाषा में, क्यों यह दमित-शोषितों के विराट समुदायों की 'सहमति जीतता' जा रहा है? किस तरह वास्तविक विश्व का भौतिक उत्पादन वर्तमान शैक्षिक सैद्धांतीकरण में विमर्श की भौतिकता के साथ भ्रमित हो जाता है, और इस तरह श्रम के सामाजिक विभाजन को बनाए रखने में सामाजिक ताकत की भूमिका को ढक देता है और उन समाजैतिहासिक संबंधों को छिपा देता है जिनके भीतर स्वयं विमर्श पैदा होते हैं? किस तरह यह भ्रम अंततः प्रत्यक्ष उत्पादकों के शोषण पर टिकी बाजार से प्रेरित सामाजिक व्यवस्था मजबूत करने का काम करता है?

इन और बहुत से अन्य सवालों का जवाब देने में, और शिक्षा के समकालीन सिद्धांतों की आत्यंतिक अनैतिहासिकता और उनकी भौतिकतावाद विरोधी प्रवृत्ति को चुनौती देने में ओलमान उस भौतिकतावादी आचरण का तर्क प्रस्तुत करती हैं जो भूमंडलीय रूपांतरण पर लक्षित है। यह काम वह एक ऐसी किताब के पृष्ठों के माध्यम से करती हैं जो एक साथ ही पूंजीवाद के बर्बर चरित्र पर आवेगपूर्ण आरोप है, और उसी समय क्रांतिकारी आचरण की उत्प्रेरक शक्ति का उत्सव भी है।

जब मैंने पहली बार इस पुस्तक की पांडुलिपि को पढ़ा था तो मैंने गहराई से महसूस किया था कि इसका प्रकाशन आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र के इतिहास का महत्वपूर्ण क्षण होगा। इसके कई पाठों के बाद, मैं पहले से भी अधिक आश्वस्त हूं कि ऐसा ही होना है। यह वह किताब है जिसका आज समय है। कुछ शिक्षा पंडितों को यह वक्तव्य अटपटा लग सकता है, क्योंकि ओलमान अपने पाठ के

नौबंध के लिए उस मार्क्सवादी आलोचना के इतिहास में वापस लौटती हैं जिसे कुछ लोगों ने 'नए समय' के लिए निराशाजनक तौर पर अप्रासंगिक बताकर खारिज कर दिया है। लेकिन सत्य से इतनी अधिक दूर कोई और बात नहीं हो सकती। इस मामले में, मार्क्स की ओर 'वापस लौटना' एकांतिक तौर पर प्रगतिशील कदम है और शैक्षिक आलोचना के क्षेत्र की एक लंबी उछाल का प्रतिनिधित्व करता है। जो अटपटा है वह शैक्षिक आलोचना के उसी दिशाहीन रास्ते पर आगे बढ़ते जाना है जिसके उत्तर आधुनिक भटकाव, उत्तर आधुनिक सिद्धांतकारों के रोमांचक विचलनों और जेम्स बांड फिल्म के दु:साहसी कारनामों के बाद, एक बार फिर हमें पूंजी के जबड़ों की ओर वापस ले गए हैं। और ऐसी स्थिति में हमारे पास पाओला ओलमान से बड़ा कोई दूसरा मार्गदशक नहीं है। वह कई वर्षो से मार्क्सवादी आलोचना के अग्रिम मोरचे पर रही हैं, और क्रांतिकारी शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में उनके कार्य ने शिक्षकों की पीढियों के लिए ग्राम्शी और फ्रेरे के कार्य को रोशन करने में मदद की है। वह ब्रिटेन में मार्क्सवादी शिक्षाशास्त्रियों के उस साहसी नए समूह की सदस्य हैं जिसमें ग्लेन रिकोव्स्की, माइक कोल, डेव हिल, एंडी ग्रीन और अन्य लोग शामिल हैं, और जो मार्क्सवादी शैक्षिक सिद्धांत को नई ऊंचाई तक ले जा रहे हैं और शिक्षा नीति पर मौजूदा बहसों को नया रूप दे रहे हैं। अगर उनकी एक और ग्रीनवुड प्रेस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने का अवसर मुझे दिया गया है तो यह मेरे लिए विशेष सम्मान की बात है। कारण सरल सा है : मैं पाओला ओलमान को धरती पर श्रेष्ठतम आलोचनात्मक विद्वानों में से एक मानता हूं। जो पाठक उनके कार्य से परिचित नहीं है, उनको मेरे मूल्याकन का साक्ष्य उस समय मिल जाएगा जब वे *क्रिटिकल एजुकेशन अगेंस्ट ग्लोबल कैपीटलिज्म* (भूमंडलीय पूंजीवाद के विरुद्ध आलोचनात्मक शिक्षा) को पढ़ लेंगे।

अगर कोई शिक्षक ऐसा है जो द्वंद्वात्मक दर्शन को जीता है और उसी में सांस लेता है तो वह पाओला ओलमान है। ओलमान के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि मौजूद पूंजीवादी सामाजिक संबंध, अतिशय क्षमता की उनकी अनमनीय संरचनात्मक प्रवृत्ति के साथ, द्वंद्वात्मक तौर पर ग्रहण किए जाएं और समझे जाएं। इस आग्रह को निर्मित करते हुए वह मार्क्स की ऐतिहासिक भौतिकतावादी आलोचना को अपनी सैद्धांतिक और राजनीतिक पद्धति के रूप में लेती हैं। वह मार्क्स को द्वंद्वात्मक विधि से पढ़ने (यानी, मार्क्स की पूंजीवाद की द्वंद्वात्मक आलोचना को द्वंद्वात्मक विधि से पढ़ना) की परंपरा से अपना कार्यक्षेत्र चुनती हैं, यह वह पठन है जो उन्हें पूंजीवाद की भौतिक वास्तविकता के संचलन और विकास को चित्रित करने में सक्षम बनाता है। संक्षेप में, उनका पारस्परिक पठन है जो न तो अवकारक (रिडक्टिव) है न

प्रयोजनमूलक और न वैसा है जो अपरिवर्तनीय प्रकृति का ऐतिहासिक बाड़ा बनाए। यह, दूसरे शब्दों में, मार्क्स और साथ में पूंजीवाद का निश्चित तौर पर खुला पठन है। केवल इसी प्रकार के आलोचनात्मक पठन से ही, ओलमान मानती हैं, उन अनगिनत भूमिकाओं को पहचानना संभव है जो पूंजी हमारे जीवन में अदा करती हैं, और उन भेदपरक शैक्षिक व्यवहारों और परिणामों को व्याख्यायित संभव है जो पूजीवादी सामाजिक संबंधों में परिव्याप्त हैं। यानी केवल ऐतिहासिक भौतिकवादी विश्लेषण पद्धति को लागू करके ही यह संभव है कि उन स्कूली व्यवहारों को शोषण की अंतर्निहित व्यवस्था के दृष्टिकोण से समझा जा सके जिन्हें यह व्यवस्था प्रचलन में लाती है। ऐतिहासिक भौतिकतावादी आलोचना भूमंडलीय पूंजीवाद को आलोचनात्मक विधि से समझने को आक्रामक तरीके से संभव बनाती है। यह पूंजीवाद के अंतर्य के द्वंद्वात्मक विकास को निर्ममता से नंगा करती है और उस तरीके को उजागर करती है जिससे पूंजीवाद हमारी दैनिक आत्मगत चेतना के घुमावदार आयामों में रच-बस गया है और उसके साथ एकीकृत हो गया है।

ओलमान मार्क्स और उनके पाठों को वर्तमान पूंजीवादी निर्मितियों की कार्यप्रणाली को समझने की कुंजी के रूप में प्रयुक्त करती हैं। उनकी अंतर्दृष्टियों को उन आवरणदार रहस्यात्मकताओं और भ्रांतियों को दूर करने के लिए विलायक की तरह इस्तेमाल करती हैं जो वर्षों से पूंजी आंतरिक प्रविधियों की जटिल कार्यप्रणाली और विशेषकर पिछली आधी सदी से पूंजीवादी सामाजिक संबंधों में आए हिमनदीय विचलनों को मापने की हमारी क्षमता को आच्छादित किए हुए हैं। परिणाम मार्क्स के उस आय, अरंजित पाठ के रूप में निकलता है जो उन तरीकों को समझने के लिए आवश्यक है जिन तरीकों से मूल्य के नियम ने हमारे सामाजिक जगत की दूर तक व्याप्त अतिवादिताओं में प्रवेश पा लिया है। मार्क्स की केंद्रीय अंतर्दृष्टि को पकड़कर, ओलमान इस पर जोर देती हैं कि सर्वाधिक आधारभूत सामाजिक संबंध वे हैं जिनके अंतर्गत लोग अपने भौतिक विश्व का उत्पादन करते हैं और वे हैं जिनमें लोग अपने उत्पादन के फलों का वितरण, विनिमय और उपभोग करते हैं।

मार्क्स, पाओलो फ्रेरे और अंतोनियो ग्राम्शी की कृतियों के आधार पर ओलमान ने शिक्षाशास्त्र के लिए परिपक्व, समयानुरूप और परिष्कृत दृष्टिकोण विकसित किया है जिसे वह क्रांतिकारी आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र कहती हैं। यह आलोचना का व्यवहार है और व्यवहार की आलोचना है जो, वह आग्रह के साथ कहती हैं, भौतिक उत्पादन की विश्व-ऐतिहासिक उत्प्रेरक गतिविधि और उन बहुआयामी तरीकों को समझने में हमें सक्षम बनाती है जिन तरीकों से वास्तविक विश्व का भौतिक उत्पादन पूंजी के संचलन के नियमों और वेशी श्रम के विनियोजन पर

आधारित शोषण की भूमंडलीय प्रक्रियाओं से जुड़ता है। यह कोई छोटा काम नहीं है, और पाओला ओलमान आज उन चुनिंदा शिक्षकों में से हैं जो ऐसे काम को हाथ में लिए हुए हैं। यह काम आज के इस संकटपूर्ण दौर में ज्यादा महत्वपूर्ण है जब शैक्षिक वामपंथ स्वयं एक संकट जैसी स्थिति से गुजर रहा है, और जब नव उदारवादी राजनीति का स्नायु तंत्र शैक्षिक नीतिनिर्माण में अपनी जड़ें जमाना शुरू कर रहा है और स्वयं को परिवर्तनवादी वामपंथी मुद्रा के आवरण में छिपा रहा है। एक ऐसे समय में जब—कम से कम अमरीकी संदर्भ में—प्रमुख परिवर्तनवादी शैक्षिक विद्वान स्वयं को पूर्व की वामपंथी पक्षधरता से मुक्त कर चुके हैं, मार्क्सवादियों को 'प्रीकेंब्रियन' आर्थिक नियतिवादी बताकर उनका मजाक उड़ा चुके हैं, और पूंजीवाद विरोधी संघर्ष का आह्वान करने वालों को निभ्रांत अतिवादी बताकर स्वयंभू तरीके से खारिज कर चुके हैं, तब वामपंथ के लिए ओलमान की पुस्तक के आने से बड़ी राहत दूसरी नहीं हो सकती।

विचलित करने वाले सत्यों को कोई पसंद नहीं करता, और ओलमान की पुस्तक कुछ पाठकों को अवश्य ही विचलित करेगी, और कुछ अन्य पाठकों में रोष पैदा करेगी। इस पुस्तक का कोई अमूर्त अभीष्ट नहीं है। इसका अक्षमायांची और मूर्त अर्थनिमाण सीधे कलेजे तक उतर जाने वाला है। पूंजीवादी प्रभुत्व की सनकें और हेर फेर, और उसको तर्कसम्मत ठहराने वाले अवधारणात्मक उपकरण इसमें बिना लाग लपेट के उजागर हुए हैं। पूंजीवाद को इसमें एक ऐसी प्रचुर और सर्वव्यापी सामाजिक क्षितिज वाली भूमंडलीय व्यवस्था के रूप में नंगा किया गया है जो अपने विस्तार के अंतहीन और उन्मादी अभियान में सामाजिक न्याय के क्रूर धृष्टतापूर्ण नकारों और शोषण के निर्लज्ज व्यवहारों को पचाती रहती है। पूंजी की पहुंच इतनी अधिक सर्वग्रामी है कि मानवीय दशाओं का कोई भी पहलू बिना घिरे नहीं बचा है। वस्तुत. हमारी सारी निजताएं पूंजी की 'गंदगी' में फंस गई हैं। और पूंजीवाद ने वेग ग्रहण कर लिया है उससे यह नहीं लगता कि इसे बगैर अथक प्रयास के गहन त्याग की पटरी से उतारा जा सकता है।

ओलमान जोर देती है, मार्क्स का अनुसरण करते हुए कि जीवंत श्रम संपत्ति के मूल्य रूप का निर्माण करता है जो पूंजीवाद के लिए ऐतिहासिक तौर पर विशिष्ट होता है। दूसरे शब्दों में, मूल्य का संवर्धन करने का अभियान ही पूंजीवादी तंत्र को आगे बढ़ाता है। ओलमान इसकी कि पूंजीवाद कैसे काम करता है, एक सम्यक समझ प्रस्तुत करती हैं जिससे पाठक पूंजी के भूमंडलीकरण की प्रक्रिया पर गहरी पकड़ बनाने में समर्थ हो सकें। ऐसा वह पूंजीवाद की आंतरिक गतिकी का अन्वेषण करके करती हैं कि किस तरह यह सामाजिक उत्पादन को एक असाध्य स्तर तक

बढ़ा देता है जो अभाव के उन्मूलन के लिए कुछ भी नहीं करता। वह यह भी उद्घाटित करती हैं कि पूंजीवाद के वितरण के संबंध कैसे केवल उत्पादन के संबंध के परिणाम हैं जो भूमंडलीय आबादी के विराट भाग की 'प्रभावी' मांग को सीमित करके खपत को सीमित कर देते हैं। वह उद्घाटित करती हैं कि भौतिक उपयोगी मूल्य कैसे केवल पण्य या जिस रूप में उपलब्ध हैं और कैसे उपयोगी मूल्य कैसे पण्य के विनिमय मूल्य से आंतरिक तौर पर संबंधित हैं और उससे अवियोज्य हैं, उस विनिमय मूल्य से जो श्रमसमय द्वारा निर्धारित होता है। वह संपत्ति जिसका निर्माण पूंजीपति द्वारा किया जाता है वह उपयोगी मूल्यों का विशाल जमघट नहीं है, बल्कि स्वयं मूल्य है। पूंजीवाद को सर्वश्रेष्ठ तरीके से मूल्य उत्पादित करने की भूमंडलीय चेष्टा के रूप में समझा जा सकता है।

ओलमान का भाष्य अनथक और अनवरत तरीके से मार्क्स के पाठों पर केंद्रित है। यह ऐसी किताब के लिए एक असामान्य सी बात है जिसके लक्षित पाठकों में शिक्षक और वे लोग शामिल हैं जो शैक्षिक सुधारों में संलग्न हैं। इस बात को दशकों हो गए हैं जब मार्क्स को गंभीरता के साथ प्रगतिशील शिक्षकों की किसी कार्यसूची में शामिल किया गया है। 1980 के दशक के दौरान—उत्तरी अमरीका के शैक्षिक वामपंथ के विवादास्पद विखंडन और आंतरिक बिखराव से पहले—कुछ विद्वानों ने उस विश्लेषण के रूपों को पकड़ने में मदद के लिए मार्क्स को प्रतिनियुक्त किया था जिससे स्कूली शैक्षिक प्रक्रिया की उजागर ऊपरी परत के नीचे की छिपी गहराई को मापने में मदद मिल सके जो बुर्जुआ शैक्षिक जीवन के स्वीकृत सहज बौद्धिक मानदंडों के पीछे के मंतव्यों को उद्घाटित कर सके, और उन सत्ता-संचालित अनुशासनों के मताग्रहों को भी सामने ला सके जिनको ऐसे जीवन को *अर्थपूर्ण सिद्ध* करने के लिए कक्षाओं में इस्तेमाल किया जा रहा था। उत्तेजनाओं के उन दिनों में मार्क्सवाद ने स्कूली शिक्षा के राजनीतिक अर्थशास्त्र की समझ पैदा करने में मदद की *थी* और योग्यतावाद (मैरिटोक्रेसी) के मिथक को चुनौती दी *थी*। सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के राज्यों के ध्वस्त होने से पहले से ही यह तर्क दिया जाने लगा था—कुछ मार्क्सवादियों द्वारा भी— कि मार्क्सवाद बहुत से क्रांतिकारी अभियानों का प्रणेता रहा है, बहुत से युद्धों के झंझावात ने इसे झकझोर दिया है, कभी यह मुक्ति की ताकत के रूप में जिस शक्ति और संभावना को उपलब्ध कराता था अब उससे पूरी तरह रिक्त हो गया है, और इस प्रक्रिया से इतना सूख गया है कि अब कभी हरा-भरा नहीं हो सकता। और विशेषकर इसकी उन अवज्ञाशील संतानों को देखते हुए जो उत्तर आधुनिकतावादियों की स्वेच्छाचारी बहसगाहों में बने इसके अपवित्र संबंधों के परिणामस्वरूप पैदा हुई हैं, अब यह समय है कि विश्व की विक्षुब्ध

आजादी को सामाजिक न्याय उपलब्ध कराने के इतिहास के शौर्य पूर्ण मगर असफल प्रयासों के सांकेतिक योगदानकर्ता के बतौर लेकर मार्क्सवाद को दर्शनशास्त्र के कूड़ेदान में डाल दिया जाए। नएपन के उत्तर मार्क्सवादी संप्रदाय में फंसकर बने अवांछित संबंधों की कुछ चकराई हुई भ्रमित संतानों के लिए मार्क्सवाद बहुत पुराना और वर्तमान के लिए व्यर्थ हो गया है और वह केवल तभी आकर्षक होता है जब या तो व्यंग्य या फिर पुरावलोकन की शैली में उसका इस्तेमाल किया जाए। सामान्य को उदात्त बनाने विखंडन को विषयबद्ध व्याख्या देने, असमानता असंतुलन का उत्सव मनाने, या दैनिक अस्तित्व के विद्रूप को अग्रिम मोरचे पर ला बिठाने के काम में उत्तर आधुनिकतावादियों से हाथ मिलाने के बजाए, ओलमान मानवता को उसके अपने पिशाचों के सामने खड़ा कर देती हैं।

समकालीन पूंजीवादी संबंध एक संकट संचालित लक्ष्य का निर्माण करते हैं और ओलमान द्वारा श्रम पूंजी संबध की चमचमाती धुनाई के रूप में उद्घाटित किए गए हैं जहां संचय के चक्रवात के मुंह से उगले गए पण्य संत्रस्त जीवों द्वारा लपककर खपा लिए जाते हैं—उन जीवों द्वारा जो न केवल उन्मादी ढंग से नए वाणिज्यिक अधिग्रहणों के आदी हो गए हैं, बल्कि स्वयं संचय के रक्त रस के लिए होने वाली आपाधापी के भी आदी हो गए हैं। यहां एक व्यक्ति का 'अतर्य', ग्राम्शी के शब्दों में भूमंडलीय पूंजीवादी समाज के भीतर सामाजिक संबंधों की समग्रता के समान होता है। कुछ शिक्षक ओलमान की तुलना में अधिक साहस और अधिक विश्वसनीय ढग से यह स्थापित कर चुके हैं कि व्यक्ति पूंजीवादी सामाजिक संबंधों के भीतरी अंतर्विरोधों का उत्पाद होते हैं। यह वह धारणा है जो ओलमान के पाठ के समुचपन को दिशाबद्ध करती है।

ओलमान की यह धारणा आज विशेष तौर पर आवश्यक है यह देखते हुए कि हम एक ऐसे समय में रह रहे हैं जिसमें श्रमघंटा अधिक सघन या कम रध्रयुक्त हो गया है और ओलमान के शब्दों में इसमें 'मूल्य निर्माणक श्रम के अधिक मिनट' समाहित हो गए हैं। श्रमघंटे के घनत्व की हाल ही की मात्रा वह मानव बन चुकी है जो उस 'सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रमसमय' में परिलक्षित होती है जो किसी विशिष्ट पण्य के मूल्य का निर्धारण करता है। जो सबसे अधिक चिंताजनक है—हालांकि पूरी तरह प्रतिपाद्य है—वह यह है कि श्रमघंटे के घनत्व की इस नई मात्रा का नव उदारवादी पंडितों द्वारा 'प्रगति' मानकर गुणगान किया जा रहा। ओलमान ध्यान देती हैं, मोशे पोस्टोन का अनुसरण करते हुए, कि प्रभुत्व सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रमसमय में कटौती के माध्यम से निर्मित होता है (आवश्यक श्रमसमय—वह औसत समय जिसे विशिष्ट ऐतिहासिक और सामाजिक दशाओं में

एक औसत कुशलता वाला श्रमिक एक विशिष्ट प्रकार के पण्य के उत्पादन मं लगाता है)।

मूल्य के प्रभुत्व की ताकत को श्रेष्ठतम तरीके से, ओलमान तर्क देती हैं, पूंजीवाद की सर्वग्रासी और मार्वभौमिक प्रवृत्तियों का परीक्षण करके ममझा जा सकता है · दूसरे शब्दों में, भूमंडलीय मामाजिक प्रभुत्व के इमके विशिष्ट रूप को ठीक मे ममझकर। पोम्स्टोन की, तर्ज पर, वह तर्क देती हैं कि हालांकि मूल्य के उत्पादन के माध्यम से होता पूंजीवादी शोषण अमूर्त होता है, यह अर्ध-वस्तुपरक और मूर्त भी होता है। दूमरे शब्दों में, हम मूल्य का अनुभव उन वस्तुनिष्ठ या मूर्त रूपा मे करते हैं जो व्यष्टि रूप में मनुष्यों के कार्यो और मानवीय भावनाओं, विवशताओं ओर अनुभूतियों से निर्मित होते है। मूल्य उत्पादन के उन सामाजिक मबंधों के भीतर अमूर्त श्रम द्वारा निर्मित होता है जो वास्तविक और व्यक्तिगत होते हैं। यह आंशिक तौर पर, उम विशेप गत्यात्मक 'नियंत्रण' के लिए जिम्मेदार होता है जिम मूल्य या अमूर्त श्रम—मूल्य का अतर्तत्व—हममें मे हर एक के ऊपर रखता है।

ओलमान महजानुभूति से इम पर ध्यान देती हैं कि अपने अंतर्विरोधों को भूमंडलीय पैमाने पर पुनर्स्थापित करने का पूंजी का प्रयास उलटाव की प्रक्रिया के साथ चलता है—यानी इन अंतर्विरोधों को वापस राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, और स्थानीय मदर्भा में पुनर्स्थापित करने की प्रक्रिया के साथ (लेकिन हमेशा उन्हीं संदर्भो में नहीं जिनमें मे वे पैदा हुए थे)। वह बताती हैं कि ये उलटी प्रक्रियाएं भूमंडलीकरण की समकरण ताकत के साथ माथ (और द्वंद्वात्मक रूप से) घटती हैं, और ये उलट प्रक्रियाएं अममान रूप से भी घटती हैं, 'भूमंडलीय क्षेत्र मे अधिक स्थानिक क्षेत्रों की ओर संचलन करते हुए, तब जब स्थानिक जमीन सफल पूंजीवादी संचय क नए प्रयासों के लिए तैयार हो गई होती है—जब, उदाहरण के लिए, बेरोजगारी या बेरोजगार भविष्य का भय श्रमिक वर्ग की शक्ति और आक्रामकता को प्रभावी ढंग से क्षीण कर चुकता है और इस तरह स्थानीय श्रमशक्ति के बीच अधिक पालतूपन और 'लचीलापन' सुनिश्चित हो चुका है।' ऐसे संचलन, पूंजीवादी संचय रणनीति में अन्य 'लचीले' ममायोजनों के साथ, विचारों पर अच्छा खासा प्रभाव पैदा करते हैं। ओलमान, एक उदाहरण के तौर पर, सत्य की सापेक्षता पर दिए जाने वाले उत्तर-आधुनिकतावादी जोर का उल्लेख करती हैं। ऐमे 'विचार' प्राय: प्रभुत्वशाली विचारधारात्मक विमर्श के भीतर वैधीकरण की प्रविधियों का काम करते हैं और उन अंतर्विरोधों को क्रियात्मक मजबूती प्रदान कर देते हैं जो पूंजीवादी सामाजिक संबंधों की दुनिया में वर्तमान में व्याप्त हो रहे होते हैं। दूसरे शब्दों में, ओलमान दृढ़तापूर्वक

कहती हैं कि 'बीसवीं सदी' के अंतिम चतुर्थांश में हुए पूंजीवाद के पुनर्उभार ने प्रभुत्वशाली विचारधारा को प्रभावित किया और प्रभावित करना जारी रखे हुए है।' मार्क्सवाद प्रेरित ऐतिहासिक भौतिकवादी विश्लेषण इस पुनरुत्पादक प्रक्रिया की आंतरिक गतिकी को समझाने का सर्वश्रेष्ठ तरीका है।

क्रिटिकल एजुकेशन अगेंस्ट ग्लोबल कैपीटलिज्म (भूमंडलीय पूंजीवाद के विरुद्ध आलोचनात्मक शिक्षा) में ओलमान आद्योपांत मार्क्स के सिद्धातबद्ध और सूक्ष्म पाठ पर जोर देती हैं जो उन सामान्य मिथ्या धारणाओं से प्रभावित न हो जो दशकों से मार्क्सवादी विद्वत्ता के क्षेत्र को ढके हुए हैं और मार्क्स के सही और सटीक पाठ को दिन की रोशनी में लाने के प्रयासों को निष्फल बना रही हैं। ओलमान के अपने प्रयास अवधारणात्मक रूप से उत्साहित करने वाले और बाध्यकारी ढंग से विद्वत्तापूर्ण हैं और गंभीर अध्ययन की मांग करते हैं, स्वयं आलोचनात्मक शिक्षकों द्वारा तो अवश्य ही। ओलमान की केंद्रीय अवधारणा यह है कि मार्क्स के प्रयास 'पूंजीवाद के अंतर्निहित और आधारभूत अंतर्विरोधों' को उद्घाटित करने पर लक्षित थे। उनका तर्क है कि ये अतर्विरोध आज भी उतने ही वास्तविक हैं जितने वे मार्क्स के समय में थे। अपने इस दावे को सिद्ध करने के लिए वह मार्क्स की पूजीवादी विकास और पूंजीवाद की 'ऐतिहासिक विशिष्टता' को एक 'प्रक्रिया' और एक 'संबंध' जिसकी पूर्व शर्तें होती हैं, के रूप में मानने की धारणा का उत्खनन करती हैं। पूंजीवाद की पूर्व शर्तें समय के साथ जटिल परिणामों में रूपांतरित हो जाती हैं। जटिल और मूर्त सामाजिक समग्रता के संवर्धित परिणामों का परीक्षण करके- –यानी पूजीवादी अंतर्विरोधों के 'उर्वर गोबर के ढेर' का परीक्षण करके—-ओलमान तर्क देती हैं कि पूंजीवाद की पूर्व शर्तों और उसके अतर्य का द्वंद्वात्मक रूप से निर्धारण करना संभव है। वह पाठकों से आग्रह करती हैं कि वे मार्क्सवाद की आलोचनाओं को तात्विकतावादी और प्रयोजनमूलक मानकर खारिज कर दें और मार्क्सवादियों के दृष्टिकोणों पर नहीं बल्कि स्वयं मार्क्स की रचनाओं पर भरोसा करें, उन रचनाओं पर जो उन संबंधों की आलोचना निर्मित करती हैं जो संबध पूंजीवाद के लिए विशिष्ट होते हैं। ओलमान जो कहती हैं उसे ही व्यवहार में भी उतारती हैं। मार्क्स की सैद्धांतिक चादर के नीचे आकर, कहा जाए तो, और उस पद्धति का विश्लेषण करके जिस पद्धति से मार्क्स सोचते हैं और यह बताकर कि मार्क्स विशेष धारणाओं को कैसे प्रयुक्त करते हैं ओलमान हमें मार्क्स की *कैपीटल* के तीनों खंडों का एक बहुत ही प्रखरतापूर्ण भाष्य उपलब्ध कराती हैं और पूंजीवाद की मार्क्स की द्वंद्वात्मक संकल्पना की अंतर्निहित अन्विति को उद्घाटित करती हैं।

पूंजीवाद के समकालीन तर्क का सर्वाधिक दुराग्रही और दुष्प्रभावी प्रकट

स्वरूप नवउदारवाद का है, जिसे ओलमान 'पूंजीवादी सत्यों के एक प्रभावी और कुशल' और एक 'क्रूर स्कूल शिक्षक' के रूप में व्याख्यायित करती हैं। वह नवउदारवाद के प्रशस्तिकारों को 'तृतीय मार्गी' राजनीतिज्ञों के रूप में सूचीबद्ध करती हैं जो उस प्यास को बुझाते हैं जो उनके अनुयायी 'नवउदारवाद के मखमली संस्करण' या 'ईमानदारी, मामाजिक न्याय, मानवाधिकार के मिलावटी अर्थो' के साथ सामाजिक न्याय के लिए रखते हैं। यह, निश्चित तौर पर 'यथास्थिति में ही परिणत होता है लेकिन मामाजिक लोकतत्र की पतनशील, विकृत भाषा में आवरित रहता है।'

द्वंद्वात्मक चिंतन की सहायता से ओलमान पाठकों को मार्क्स के विचारों के इंजन कक्ष में ले जाती है और मार्क्स की विचारोत्तेजक अंतर्दृष्टियों के पिस्टनों के बीच गर्वीली ठपन के साथ सचलन करती हैं और मार्क्स की द्वंद्वात्मक अवधारणा के, 'अंतर्निहित' संबधों की अवधारणा के, सर्वाधिक आवश्यक तत्वो पर केंद्रित करते हुए आगे बढ़ती हैं—विशेष रूप से द्वद्वात्मक अंतर्विरोधों पर या स्वयं पूजीवाद की आंतरिक तौर पर संबद्ध द्वंद्वात्मक प्रकृति पर। वह खुलासा करती हैं कि मूल्य रूप किस तरह सभी सामाजिक सबंधो और आदती व्यवहारों के बीच संचलन करता है और कैसे उन्हें ऐसे गुंथे हुए सजाल में बाध देता है जो उसका निर्माण करता है जिसे प्राय: पृंजीवादी समाज की सामाजिक सरचना कहा जाता है।

ओलमान ध्यान दिलाती हैं कि यह समझना अपरिहार्य है कि पूंजीवाद की सर्वाधिक आधारभूत समस्या वितरण या उपभोग के क्षेत्र में नहीं है, बल्कि उत्पादन के सामाजिक संबंधों के भीतर निहित है। ओलमान की पृंजी की द्वंद्वात्मक संकल्पना है जो पूंजी की परस्पर विरोधी उस जमीन को उद्घाटन करती है जो, स्वयं श्रम पूंजी संबंध में अंतर्निहित होती है। और इस तरह उन अंतर्विरोधों को निर्वस्त्र कर देती है जो उत्पादन के सामाजिक सबधों के हृदय क्षेत्र में रहते हैं। वह हमें बताती हैं कि पृजी का मूल्य रूप जो इन आंतरिक संबंधो या अंतर्विरोधों को आकार देता है, वह न केवल उन वास्तविक दशाओ को प्रभावित करता है जिनके अंतर्गत लोग श्रम करते हैं, बल्कि स्वयं निजत्व की जमीन को भी प्रभावित करता है। यह मध्यस्थताकारी भूमिका निर्दोष नहीं होती, और जीवन को अर्थ और उद्देश्य को लेकर हमारे स्वप्नों, इच्छाओं और विश्वासो को प्रभावित करती है। ओलमान ध्यान देती हैं कि, उदाहरण के लिए कि किस तरह पूंजीपति मुख्य तौर पर इसके लिए चिंतित रहते हैं कि अपने पण्यों के नाम पर वे कितना अधिक से अधिक वेशी मूल्य उगाह सकते हैं। जीवन घटकर अधिग्रहण, सचय और सत्ता को पाने और बनाए रखने तक सीमित हो जाता है। जीवन मृत्यु हो जाता है और मृत्यु जीवन का रूप रख लेती है। लोकतंत्र के

श्मशान की अध्यक्षता करने वाले वॉलस्ट्रीट के अंतिम संस्कार निदेशकों का दर्शन यही है।

मार्क्स और मार्क्सवाद को समझने में ओलमान के बहुत से अवदानों में से एक उस समय प्रत्यक्ष होता है जब वह उन बहुत सी आधारभूत मिथ्या अवधारणाओं की पहचान करती हैं जो समाजवादियों और पूंजीवाद के उदारतावादी आलोचकों को लगातार ग्रसे हुए हैं। ये दोनों समूह प्रायः संपत्ति के अधिक उचित वितरण की पैरोकारी करते हैं, यह तर्क देते हुए कि वर्तमान असमान वितरण जो समकालीन पूंजीवादी समाजों को चरित्रित करता है, संपत्ति संबंधों में पैदा होता है—विशेषकर उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व से। यही वह बिंदु है जहां ओलमान अपने बहुत से मार्क्सवादी साथियों का साथ छोड़ देती है। पूंजी को इस तरह समझते हुए कि जो पूंजीवाद के नियमों, प्रवृत्तियों और गतियों को व्याख्यायित करने के लिए और पूंजीवादी समाजों में संपत्ति के ऐतिहासिक तौर पर विशिष्ट रूप का विश्लेषण करने के लिए मार्क्स के मूल्य के सिद्धांत या मूल्य के नियम के प्रयोग के अनुरूप हो वह- -मेरे विचार में और सही तौर पर —आतरिक या द्वंद्वात्मक संबंध की वास्तविक अपराधी के तौर पर पहचान करती हैं जो स्वयं पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया के भीतर पूंजी और श्रम के बीच रहता है--एक ऐसा सामाजिक संबंध जिसमें पूंजीवाद मजबूती से जड़ जमाए हुए है। यह सामाजिक संबंध —जो अमूर्त श्रम के उत्पादन में प्रत्यक्ष सिद्ध होता है—यह देखता है कि कैसे पहले से बने हुए मूल्य को बनाए रखा जाए और कैसे नए मूल्य को (विशेषकर बेशी मूल्य) निर्मित किया जाए। यही वह अंतर्निहित द्वंद्वात्मक संबंध है जो उपयोगी मूल्यों के असमान और अन्यायपूर्ण वितरण के लिए और पूंजी के संचय के लिए जिम्मेदार होता है—यही धन पशुओं को निर्धनों की कीमत पर और अधिक धनवान बनाता है। पूंजी और श्रम के बीच का यही संबंध है जो उन दशाओं को पैदा करता है जो उत्पादन को बाजार के लिए निर्धारित कर बाजार संबंधों और प्रतिस्पर्धात्मकता को पनपाकर, और पूंजी के ऐतिहासिक तौर पर विशिष्ट नियमों और प्रवृत्तियों को उत्पन्न करके पूंजी की सत्ता को संभव बनाती हैं। सही है कि निजी संबंध एक कारक है। लेकिन निजी संपत्ति पण्य और बाजार ये सब उत्पादन के विशिष्ट श्रम पूंजी संबंधों से पहले के हैं और इसके लिए पूर्व शर्तों की तरह काम करते हैं। और जैसे ही एक बार पूंजी विकसित हो जाती है ये तत्व उस संबंध के परिणामों में रूपांतरित हो जाते हैं। यही कारण है कि ओलमान अभाव से मुक्ति की जमीन तैयार करने के साधन के रूप में श्रम पूंजी संबंध के उन्मूलन की दृढ़ता से पैरोकारी करती हैं। ओलमान का विश्वास है कि मानवता का भविष्य पूंजी को एक विश्वसनीय और प्रभावी चुनौती के द्वारा ही

बदला जा मकता है। यह पुस्तक सशक्त रूप से ऐमी चुनौती के निर्माण में सहायता देनी है।

ओलमान ऐतिहासिक अपरिहार्यता की मिथ्या धारणा को भी संबोधित करती हैं। वह ऐतिहामिक और प्रगतिशील अपरिहार्यता के अस्तित्व को नकारती हैं—इस धारणा के विरुद्ध तर्क देते हुए कि समाजवाद पूंजी के अतर्विरोधों में से स्वत: और अपरिहार्य तौर पर विकमित हो जाएगा। इतिहास अपने आपको 'अपनी अतर्निहित प्रयोजनमूलकता या किसी बाहरी प्रयोजनमूलक शक्ति के अनुमार' विकमित नहीं करता। वह ध्यान देती हैं कि 'मार्क्स भली भांति जानते थे कि पूजीवाद के उत्तराधिकारी के रूप में बर्बरतावाद का भी उसी तरह जन्म हो सकता है जिस तरह समाजवाद का।' वस्तुत: उनका तर्क है कि अगर मार्क्स को यह भय नहीं होता कि पूंजीवाद के उत्तराधिकारी के रूप में बर्बरतावाद के मूक्ष्म रूप आ सकते हैं तो वह अपनी विराट और विश्व को झकझोरने वाली बौद्धिक परियोजना को हाथ में लेने के लिए प्रेरित नहीं होते।

ओलमान इस प्रचलित मार्क्सवादी आग्रह की भी आलोचना करती हैं कि औद्योगिक सर्वहारा समाजवाद के भविष्य का हरकारा होगा। ऐसा इतिहास है कि समाजवाद के भविष्य का तात्पर्य है पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया और संपत्ति के मूल्य रूप का उन्मूलन। और मार्क्स भी यह तर्क नहीं देते कि केवल उत्पादन के पहले से ही मौजूद साधनों के निजी स्वामित्व से सामाजिक स्वामित्व मे आने से ही समाजवाद स्थापित हो जाएगा। ओलमान दृढ़ता से उस समय मार्क्स का अनुसरण करती हैं जब वह एक वैकल्पिक, समाजवादी समाज की ओर से जाने वाले आंदोलन या प्रक्रिया की, और फिर वहां से साम्यवादी सामाजिक संरचना की ओर ले जाने वाले आंदोलन की बात करती हैं, यानी उस आदोलन की जिसमें नए सामाजिक संबंधों का निर्माण और फिर इन नवनिर्मित संबंधों के भीतर व्यक्तियों, प्रक्रियाओं और वस्तुओं का रूपांतरण शामिल होगा। ऐसे सामाजिक संबंध सामूहिक, सहयोगात्मक और समरसतापूर्ण होंगे जिनमें मनुष्य और उनके श्रम के उत्पाद मनुष्यता और प्राकृतिक विश्व की बेहतरी के लिए रूपांतरित होंगे। मनुष्य की क्षमता के पूर्ण विकास और व्यष्टि के पूर्ण खुलाव और संवृद्धि को प्राप्त करने की अपनी परिकल्पना को लेकर ओलमान गंभीर भी हैं और भावुक भी। निश्चित तौर पर साम्यवाद की पैरोकारी को आज एक हिचकिचाहट भरी स्वीकृति ही मिलती है। हालांकि यदि पूंजी के विकल्प के अलावा कोई और विकल्प नहीं है तो इतिहास निश्चित तौर पर उसे दोषमुक्त कर देगा जो बहुत से शिक्षकों के मन को एक अदूरदर्शितापूर्ण और डरावनी सलाह प्रतीत हो सकता है।

ओलमान पूंजीवाद का जो चित्र प्रस्तुत करती हैं वह हमें किसी भी ऐसे आडंबर से मुक्त कर देता है जिसमें हम अभी भी चिपके हुए हो सकते हैं—यानी कि इसे सुधारा जा सकता है और विश्वव्यापी अभाव को उन्मूलन के लिए इसको उत्पादक बनाया जा सकता है या इसको स्वास्थ्यकर या सभ्य लक्ष्यों के लिए बचाया जा सकता है। वस्तुतः यह अपनी कार्यपद्धति में ही नष्टकारी है, यह ऐसा सामाजिक संबध है जो गरीबी, जातिभेद, लिंगभेद आदि और हर प्रकार के शोषण को जन्म देता है। ओलमान की मार्क्सवादी परिकल्पना में पूंजीवाद एक त्रासण क्षण, एक अपूर्णीय घाव और भूचाली प्रकार का विनाशवाद है। उनकी प्रतिक्रिया आज के ऐसे समय को देखते हुए असामान्य जैसी है जिसमें पूंजीवाद इतना सहज दिखाई देता है जितनी कि वह हवा जिसमें हम सांस लेते हैं। लेकिन क्या यह प्रतिक्रिया अनुचित है? क्या हम यह मानकर कि पूंजीवाद निरंतर दमन शोषण से संबंधित रहता है परंपरा की पवित्र सीमा का उल्लंघन कर रहे हैं? कि यह असुधार्य तिरस्कार्य वस्तु है? या कि वह लोकतंत्र जो आज विकसित देशों में व्यवहृत है, जाति, लिंग और वर्ग के अन्यायों से ग्रस्त शोषण के अधिक आधारभूत संबधों पर पड़ी हुई एक नकली चादर मात्र है? यही वह चुनौती है जो ओलमान पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। 'भूमंडलीय पूंजीवाद के विरुद्ध आलोचनात्मक शिक्षा' में आद्योपांत पूंजीवाद को इसके सूक्ष्मतम विवरण और इसकी हड्डी कंपाने वाली भयावहता के साथ प्रस्तुत किया गया है और लेखिका द्वारा आवेगपूर्ण तार्किक ढंग से इसकी कटु निंदा की गई है। बिना इस बात की चिंता किए हुए कि यह तर्क पाठक के लिए असुविधा भी उत्पन्न कर सकता है। दो कार्यसूचियों के अपने संयोजन में---पूंजी के बारे में मार्क्स की द्वंद्वात्मक समझ को स्पष्ट करना और एक क्रांतिकारी आलोचनात्मक शिक्षा के विकास में इसको लागू करना-- यह तर्क दमनकारी बुर्जुआ व्यवस्था के लिए एक चुनौती निर्मित करता है। पूंजी एक जड़ वस्तु नहीं होती, या यह कोई सट मुट धारी कारपोरेट प्रबंधक नहीं होती जो वॉलस्ट्रीट के इर्द गिर्द चक्कर मार रहा हो। ओलमान ने इसको एक संबध और एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में चित्रित किया है जो एक विशिष्ट ऐतिहासिक कालखंड में संपन्न होती है। एक संबंध और एक प्रक्रिया के रूप में इसे पहचानना कठिन होता है। जो हमें दिखाई पड़ते है वे इसके प्रभाव होते हैं। जिन्हें हमें समझने की जरूरत होती है वे इसके कारण हैं।

मैं इस पर ओलमान से सहमत हूं कि वे शिक्षण व्यवहार जो फ्रेरे ग्राम्शी और मार्क्स के संश्लेषण पर आधारित हैं। वे वस्तुतः औपचारिक संदर्भ में काम कर सकते है। ओलमान का स्वयं अपने शिक्षण का विवेचन और विश्लेषण अत्यधिक प्रभावशाली है। उनकी फ्रेरे के बारे में गहरी समझ स्वागत योग्य है, खास तौर पर फ्रेरे के

शिक्षाशास्त्र के बारे में उन गंभीर भ्रांतियों को देखते हुए जो पिछले कई दशकों में लगातार फैलती गई हैं। ऐसा उनके कार्य का लगातार अनुकूलन होने और बुर्जुआकरण होते जाने के कारण हुआ है। फ्रेरे का अनुकरण करते हुए ओलमान ने अपनी कक्षा में बड़ी कुशलता से एक ऐसा शैक्षिक कार्यक्षेत्र निर्मित किया, जिसने आलोचनात्मक चेतना को मुकर बनाया। आलोचनात्मक चेतना यानी दैनिक जीवन के साथ द्वंद्वात्मक रिश्ता बनाने की ऐसी विधि जिसमें उनके विद्यार्थियों को अपने स्वयं के ऐतिहासिक अनुभवों पर चिंतन-मनन के लिए प्रवृत्त किया। विद्यार्थियों ने यह कार्य अपने प्रतिदिन के जीवन की गूढ़ताओं को समझकर किया और इस प्रक्रिया में वे स्वयं अपने जीवन के यथार्थ से आलोचनात्मक ढंग से निपटने के लिए मुक्त हो गए ताकि वे इसे अपने तरीके से रूपांतरित कर सकें। विद्यार्थियों ने समझा कि वे अपने जीवन का स्वतंत्र चुनाव नहीं कर सकते, कि उनकी पहचानें और उनके उपभोग की वस्तुएं उस तरीके की अनुकूलक प्रतिक्रियाएं हैं जिस तरीके से पूंजीवादी व्यवस्था उनकी आवश्यकताओं के फलक का दोहन करती है। इस प्रतिबोधी समझ के साथ कि फ्रेरेवादी शिक्षाशास्त्र निश्चित तौर पर निर्देशात्मक है और कि फ्रेरेवादी शिक्षक अविचलित तौर पर निदेशात्मक हैं, उन्होंने अपने विद्यार्थियों के लिए अपनी दुनिया को पहचानने का संदर्भ निर्मित किया और संवाद के माध्यम से उनमें वह क्षमता विकसित की जिससे वे अपने ऐतिहासिक यथार्थ को रचनात्मक ढंग से पुनर्सृजित कर सकें। वह फ्रेरे शिक्षाशास्त्र को इसके उन नकलचियों से सावधानी से अलग प्रस्तुत करती हैं जो शिक्षक को एक अकर्मण्य सहजीवी मे परिवर्तित कर देते थे। ऐसा वह इस तर्क के साथ करती हैं कि, अंततः, क्या यह निर्देशात्मक नहीं है कि हम विद्यार्थियों से दुनिया को आलोचनात्मक ढंग से पढ़ने का आग्रह करते हैं ताकि वे इसे इस तरह बदल सकें जिससे मानवीकरण को बढ़ावा मिले? क्या यह मांग करना भी निर्देशात्मक नहीं है कि दुनिया को रूपातरण की आवश्यकता है और कि शिक्षा को इस प्रयास में निर्णायक भूमिका निभानी चाहिए? इसके अलावा, क्या शिक्षकों को अपने उस अधिकार का उपयोग नहीं करना चाहिए जो उन्हे दुनिया के अपने आलोचनात्मक अध्ययन से और शिक्षा के फ्रेरे के दर्शन की समझ से प्राप्त होता है? क्या प्रगतिशील शिक्षा का सर्वाधिक सुगमकारी, अ-निर्देशात्मक और अ-निदेशात्मक रूप इस अर्थ में दुगुना निदेशात्मक नहीं है कि यह अ-निर्देशात्मक के लिए और साथ ही राजनीतिक अनुकूलन और पूंजी के सामाजिक क्षितिज और मूल्य के नियम के सफल अनुकूलन के लिए निर्देश होता है? निश्चित तौर पर, फ्रेरेवादी शिक्षक निर्देशन और निदेशन करते हैं, लेकिन इस तरीके से जो विनम्रता और पारस्परिकता की भावना से उद्‌भासित होता है।

ओलमान इस तथ्य को बहुत अच्छी तरह से पहचान करती हैं कि वे अधिकांश आलोचक जो पूंजीवाद की निंदा करते हैं, इसके प्रभावों के बारे में तो लगातार शिकायत करते हैं जबकि उत्पादन के पूंजीवादी सामाजिक संबंध को पूरी तरह समाप्त करने की बात कहने से रुक जाते हैं। दु:खद यह है कि ये आलोचक उदार लोकतंत्र की अवधारणा की एक आम स्वीकृति को प्रकट करते हैं या फिर इस आम प्रचलित धारणा के प्रति दबी हुई स्वीकृति प्रकट करते हैं कि एक जटिल सामाजिक व्यवस्था में यह उतना लोकतांत्रिक है जितना कि हो पाना संभव है।

ओलमान विचारधारा की आलोचना को व्यवहार में लाने की तरफदारी करती हैं, उन रहस्यात्मकताओं और असत्यों को उजागर करने की बात करती हैं जो पूजीवादी एकाधिपत्य की 'दुखती रग' तैयार करते हैं। ओलमान का मानना है कि एक सकारात्मक शक्ति के मिथक के तौर पर पूंजीवाद को नंगा करने और इसके भीतर के गले हुए मांस को उजागर करने और इसे चुनौती देने के लिए इस समय अनुकूल परिस्थितियां हैं। वास्तविक प्रगति वह नहीं होती जो अपरिवर्तनीय हो वस्तुत: पूंजीवाद के अंतर्गत प्रगति के अत्यधिक उलट जाने की संभावना रहती है। इसलिए इसमें आश्चर्य नहीं है, ओलमान ध्यान दिलाती है, हम इस विचार का लगातार बना रहता हुआ देखते हैं कि हम आज ऐसी दुनिया में रह रहे हैं जिसमें सबके लिए अधिक विविधताएं और विकल्प मौजूद हैं। और यह एक अच्छी स्थिति है। मगर यथार्थ यह है कि केवल संपन्न लोगों के लिए ही पसंदीदा चुनाव करने के लिए अधिक विकल्प है, क्योंकि उनकी पसंद सीधे तौर पर उनकी क्रयशक्ति से जुड़ी होती है। अधिक स्पष्टत:, आज के पूंजीवादी समाज में जिनके पास चुनने के लिए सर्वाधिक विकल्प हैं, ये वे लोग हैं जिनके पास क्रयशक्ति है, जो हमेशा जरूरतमंद रहते हैं, जिनकी आवश्यकताएं अनेकानेक प्रकार की होती हैं और जो खरीदने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। विविधता के विचार में जिस तथ्य की लगातार उपेक्षा की जाती है वह यह है कि करोड़ों अरबों लोगों के पास कोई क्रयशक्ति नहीं है और जो क्रयशक्ति उनके पास हो सकती थी वह नवउदारवाद के अंतर्गत क्षीण हो रही है। यहां जो हुआ है वह यह है कि 'अधिक होने' के विचार के अभाव को समाप्त करने के विचार से अलग कर दिया गया है और 'विकल्प और पसंद' के विचार से जोड़ दिया गया है। ओलमान सवाल करती हैं : अधिक विकल्प किसके लिए? और किस उद्देश्य के लिए? और पसंद के ये अधिक विकल्प किसका हित साध रहे हैं?

ओलमान जिसे 'आलोचनात्मक/क्रांतिकारी आचरण' के नाम से अभिहित करती हैं वह मार्क्स के चेतना के उस क्रांतिकारी सिद्धांत पर आधारित है जो विचार

और मानव व्यवहार के बीच या चेतना और भौतिक यथार्थ के बीच आंतरिक संबंधों को पकड़ता है। क्रांतिकारी आचरण शिक्षकों को इस भ्रामक विचार से मुक्ति दिलाने पर लक्षित है कि पूंजी को उत्तरदायी बनाकर और इसे अधिक जिम्मेदार होने के लिए बाध्य करके, या जार्ज डब्ल्यू बुश के कुचर्चित शब्दों में अधिक 'करुणाशील' बनाकर, उदार लोकतंत्र को कार्यक्षम बनाया जा सकता है। यहां एक ऐसी आलोचना उपलब्ध होती है जो उन पदों और श्रेणियों को जो बुर्जुआ संस्थानों और राज्य के उपकरणों को वैधता प्रदान करने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं, असंगत ठहराने को समर्पित है, और साथ ही उसे भी जो बुर्जुआ सामाजिक व्यवस्था की आंतरिक आलोचना को व्यापक सामाजिक, ऐतिहासिक और आर्थिक प्रक्रियाओं से जोड़ता है। यह ऐसा दृष्टिकोण या अभिगम है जो वर्तमान सत्ता प्रबंध को केवल संशोधित करने, उसका परिसामन करने या उसका पुनर्श्रेणीकरण करने के प्रयासों की कटु आलोचना करता है और उस प्रयास की भी आलोचना करता है जो बिना उस तरीके को चुनौती दिए हुए जिस तरीके से उत्पादन के साधनों के स्वामित्व वाले सत्ताधारी वर्गों और साधनविहीन श्रमिक वर्गों के बीच अलगाव के संदर्भ में श्रम के सामाजिक विभाजन के भीतर सत्ता निर्मित होती है, केवल इसके सतही क्रियात्मक प्रभाव को ही चुनौती देता है। संक्षेप में, यह एक ऐसा शिक्षाशास्त्र है तो क्रांतिकारी आचरण के रूप में है, एक ऐसा शिक्षाशास्त्र जो समूचे विचार और व्यवहार को रूपांतरणकारी आंदोलन से जोड़ता है, ऐसे आंदोलन से जो उन जंजीरों को तोड़ता है, जो शोषण की निंदा करने और इसके विरुद्ध संघर्ष करने की हमारी क्षमता को बाधित करती हैं। ओलमान का दृष्टिकोण राजनीतिक तौर पर उस उत्तर आधुनिक आलोचनात्मक व्यवहार के एकदम उलट खड़ा होता है जो पूंजी और श्रम के बीच के सुरमे को पुनर्व्यवस्थित करके एक सुगंधयुक्त संतुलन में बदलना चाहता है और जो केवल उन 'सतही संचलनों की नकल उतारना' चाहता है जो अपने आंतरिक अंतर्विरोधों को व्यवस्थित करने, उन्हें विस्थापित करने और उनका तात्कालिक तौर पर समाधान करने के पूंजी के हताश प्रयास के भीतर निहित रहते हैं।

ओलमान उस 'बेतुके सुखलोक' के विरुद्ध बोलती हैं जिसे उन लोगों ने प्रचारित किया है जो इस 'हास्यास्पद अवधारणा' से चिपके हुए हैं कि उदार लोकतंत्र हमें पूंजीवाद की निकृष्टतम अतियों से बचा सकता है और यह पूंजी के गहराते और निरतर फैलते अतर्विरोधों और पूंजीवादी सामाजिक संबंधों में आते आसन्न संकट के बावजूद हमें लगातार सभ्य मनुष्यों के रूप में जीवन जीने के योग्य बना सकता है। वाग्मिता और कुशाग्रता के साथ वह पूंजीवाद और इसके गुलाम नवउदारवाद के विचारधारात्मक तौर पर पुनर्पुष्ट क्षितिज के परे एक भविष्य की

परिकल्पना करती हैं। हालांकि हमारे कल्याण की कुछ सीमाएं हमारे द्वारा निर्मित नहीं हैं, हालांकि उन्हें आग्रह के साथ चुनौती दी जा सकती है। वे सीमाएं जिनके भीतर हम अपना निर्माण करते हैं, अंतिम चरण में आलोचनात्मक चेतना के शैक्षिक कर्म और क्रांतिकारी संघर्ष के सामूहिक कर्म द्वारा ध्वस्त की जा सकती हैं। उस समय क्या होगा, उदाहरण के लिए, जब श्रमिक वर्ग पूंजी का मूल्यवर्धन करना बंद कर देगा? हमें इस ओर काम करना है कि श्रमिकगण अपने द्वारा पैदा किए गए उपयोगी मूल्यों का स्वयं सीधा विनियोग कर सकें, और इस तरह मूल्य और कार्य की सत्ता को समाप्त कर सकें। निश्चित तौर पर, अन्य तत्वों के साथ साथ, इसके लिए श्रमिकों द्वारा अपने उत्पादों के प्रत्यक्ष विनियोग के साथ साथ उत्पादक शक्तियों का जनकरण या सर्वसाधारणीकरण करना होगा। ओलमान अब भी मानती हैं कि श्रमिक वर्ग का संघर्ष—यानी उस वर्ग का जिसमें वे सब शामिल हैं जो श्रमिक हैं और जो श्रम पूंजी संबंध के भीतर अधिशेष मूल्य के उत्पादन में संभाव्य तौर पर उत्पादक श्रमिक हैं—पूंजीवादी विकास की गति को अखंडनीय तौर पर सीमित करता है और अंतर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी गठबंधन के निर्माण की जमीन तैयार करता है। यहां वह श्रमिक वर्ग स्वयं के ऐसे स्वयंभू प्रबंधन की अपेक्षा करती है जिसे किसी हरावल पार्टी की मध्यस्थता की आवश्यकता न हो क्योंकि, ओलमान मानती हैं कि, हरावल दस्ते जनता के बीच परस्पर विनिमयशील या आपस में बदलते रहने वाले होने चाहिए।

ओलमान एक प्रति पूंजीवादी, मानवता समर्थक भूमंडलीय पारस्परिकता की वकालत करती हैं। उन पूंजीवादी सामाजिक संबंधों में जो मानवता पर प्रभुत्व बनाए हुए हैं, युगांतरकारी परिवर्तन लाने के लिए हमें 'उन मानवीय सामाजिक संबंधों को जिनके हम अभ्यस्त हो गए हैं और अपने अनालोचनात्मक/पुनरुत्पादक आचरण के दैनिक चक्र द्वारा जिनके पुनरुत्पादन और संभरण में हम सब शामिल हैं, अस्वीकार करने और भंग करने की आवश्यकता होगी।' इसके लिए हमें व्यवहार के समंजन या सामंजस्य की आवश्यकता होगी—यानी, एक ऐसी समंजित पहचान की निर्मिति करनी होगी जो उन विकसित विचारों, मूल्यों और विश्वासों पर आधारित हो जो मूलभूत रूप से तर्कपूर्ण और नैतिक रूप से स्थिरतापूर्ण हों और जो हमें हमारी बहुपरतीय पहचानों के अंतर्विरोधों के बीच में काम करने में मदद कर सकें ताकि हम विविधता और अपने समकालीन जीवन विश्व के प्रवाह को समझ सकें। निश्चय ही, ओलमान जानती हैं कि सुसंगत क्रांतिकारी आत्म की रचना कोई अंतिम स्वरूप नहीं रखती और निरंतर निर्माण की प्रक्रिया में रहती है, उस प्रक्रिया के भीतर जिसमें इस विश्व में रहने वाले प्रत्येक

दूसरे पुरुष, स्त्री और बच्चे तक पहुंचने और उससे आंतरिक तौर पर संबंधित होने का हमारा निरंतर प्रयास शामिल रहता है।

एक वैकल्पिक समाज की ओर ले जाने वाले क्रांतिकारी आचरण की बात करते हुए ओलमान मार्क्स का अनुसरण करती हैं—यह वह वैकल्पिक समाज होगा जिसमें नए सामाजिक संबंधों का निर्माण और इन नए संबंधों के भीतर व्यक्तियों, प्रक्रियाओं और वस्तुओं का रूपांतरण शामिल होगा। इसके लिए एक सामूहिक, सहयोगात्मक और आलोचनात्मक आंदोलन की आवश्यकता होगी जिसमे ऐसे नए समन्वयपूर्ण संबंधों का निर्माण किया जा सके जिनमें हम और हमारे श्रम के उत्पाद मनुष्य, जाति और प्राकृतिक विश्व की बेहतरी के लिए रूपांतरित हो सकें। केवल ऐसे ही संदर्भ में हमारी वैयक्तिक और सामूहिक क्षमताओं का पूर्ण प्रस्फुटन और संवर्धन संभव बनाया जा सकता है।

अंतिम चरण में, 'पूंजी के क्षितिज को मिटाने' का संघर्ष एक शैक्षिक संघर्ष होना चाहिए, और इसके लिए ओलमान एक क्रांतिकारी आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र के विकास को पर्याप्त महत्व देती हैं। ओलमान के लिए स्कूलों को सामाजिक सक्रियता का केंद्र बनाना चाहिए और ऐसा राजनीतिक प्रांगण बनना चाहिए जिनमें से एक नए समाज की स्थापना का संघर्ष चलाया जा सके, यानी एक समाज का जो शोषण से मुक्त हो, अभाव से मुक्त हो और अमूर्त श्रम का चाकर बनाने के छात्रों के प्रशिक्षण की ऐतिहासिक भूमिका से मुक्त हो। निश्चय ही शैक्षिक सुधार का संघर्ष एक आवश्यक संघर्ष है, मगर साथ ही अपर्याप्त भी है। पूंजी की सामाजिक दुनिया के बाहर एक विश्व का निर्माण करने का अर्थ है परस्पर गुथे उन आंतरिक संबंधों की समग्रता को नष्ट करना जो पूंजी को अंतहीन गति मे बनाए रखते हैं। पूंजीवाद को 'ना' कहने का तात्पर्य है इसे मानवीयकरण की पुष्टि मे रूपांतरित करने का संघर्ष करते हुए 'ना को जीना।' इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि मानवीय संभावनाओं को उनकी हदों तक ले जाया जाए ताकि जिसे मार्क्स 'स्थितियों की वर्तमान दशा का उन्मूलन' कहते हैं, उसे प्राप्त किया जा सके। क्रांति, ओलमान कहती हैं, हमसे मांग करती है कि हम मनुष्य के स्वतः विस्तार को रोकें और इसमें केवल अपनी सामाजिक और आर्थिक दशाओ का रूपांतरण ही शामिल नहीं है, बल्कि स्वयं हमारा अपना रूपांतरण और उस तरीके का रूपांतरण भी शामिल है जिस तरीके से हम सामाजिक प्राणी के तौर पर एक-दूसरे से संबंधित होते हैं।

ओलमान की दृष्टि एक सुसंगत दृष्टि है, जिस तरह कि वह आचरण है जिसकी व्याख्या वह आगे के पृष्ठों में बहुत ही सटीक ढंग से करती हैं। यह वह आचरण है जो शैक्षिक सिद्धांत की आमूल पुनरावधारणा की मांग करता है, और

जिसका आधार आगामी पृष्ठों में प्रकट होता है। भावी शिक्षकों के निर्माण के लिए संभवतः वर्तमान में उपलब्ध ये सर्वाधिक महत्वपूर्ण अध्याय हैं। उन्हें सुसंगति और सुसंबद्धता के साथ प्रयुक्त करने के लिए पुराने विचारों से अलग होने की इच्छा, विपरीत स्थितियों का सामना करने का साहस और क्रांतिकारी ज्ञान के रास्ते का अब तक के अछूते क्षेत्रों में अनुसरण करने की दृढ़ता आवश्यक होगी। ओलमान हमें आश्वस्त करती हैं कि मार्क्स, फ्रेरे और ग्राम्शी द्वारा क्रमिक तौर पर आगे की राह दिखाए जाने के साथ हमारी यात्रा हमें अज्ञात युद्ध क्षेत्रों की ओर ले जाएगी, जहां सिद्धांतों का युद्ध लड़ा जाएगा, और जीता जाएगा।

—पीटर मैक्लारेन

आभार

ऐमे बहुत से व्यक्ति हैं जिनके प्रति मैं आभार व्यक्त करना चाहती हूं लेकिन जो कृतज्ञता मैं अनुभव करती हूं उसे अभिव्यक्त करने के लिए यहां स्थान बहुत कम है।

सर्वप्रथम, मेरा हार्दिक धन्यवाद क्रिस एडवर्ड्स को जो मेरे लिए बहुत ही विशिष्ट हैं, और जिनका उनके परिवार सहित यह पुस्तक समर्पित है। जब हम पहली बार अलग हुए तब से वह मेरे लिए सबसे बड़ी प्रेरणा बनी रही और जब हम अंततः दुबारा मिल गए हैं, तब से तो वह और भी बड़ी प्रेरणा सिद्ध हुई हैं।

इसके बाद वे तीन व्यक्ति हैं जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व ने मेरे अपने जीवन पर इतना गहरा प्रभाव डाला है--कार्ल मार्क्स पाओलो फ्रेरे और एंटोनिओ ग्राम्शी। इन लोगों ने मानव जाति को जो बौद्धिकता भेंट की है और इस बौद्धिकता मे हम सबके लिए जो आशा निहित है, उसका छोटा सा हिस्सा भी अगर लोगों तक पहुचाने में मैं मदद कर सकूं तो इस पुस्तक के और इससे पहले लिखी गई पुस्तक के भी, मेरे श्रम का हर कण सार्थक होगा। मेरे सोच मे उनके प्रत्यक्ष योगदान के अतिरिक्त, शायद मार्क्स और ग्राम्शी के संदर्भ में यह एक विडंबना है, निश्चित तौर पर फ्रेरे के संदर्भ में नहीं है, कि इन लोगों ने इश्वर के साथ मेरे संबंध को और अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रगाढ़ बनाया, जिसके प्रेम और विवेक ने मेरी आलोचनात्मकता को और अधिक प्रखर बनाया, मुझे अधिक उम्मीद बधाई, और जिसके प्रति मैं असीमित रूप मे आभारी हूं।

मैं उन लोगों को भी धन्यवाद देना चाहती हूं जिनकी दोस्ती मेरी निधि रही है—जो मेरे लिए हमेशा ही प्रसन्नता, सहयोग और प्रेम के स्रोत रहे हैं और जिन्होंने मेरी हर उधेड़बुन के बावजूद मेरा साथ निभाया है—विशेषकर, जिल विंसेंट, मैगी और डेविड रिचमंड, ब्रेंडा और डेविड जैक्सन, सुसान और मेरी वालिस, मार्गरेट बॉउदर, मैबल नून, स्व. इवान बार्कर, हिलेरी, जॉन, एडम और फ्रान बेरिज, केरोलिन और साथ ही (प्यार भरी स्मृतियों में) विन विलियम्स, मेरिअन फ्रांसिस, गिल गुडचाइल्ड, रिक हेस्लोप, मार्गरेट और डेविड वारसोप, जेन और निगेल हॉर्विट, और मेरे आजीवन दोस्त : मेरिली सीअर्सी, संडी हार्लोव, सू डटमर्स, हेलेन फरेल, और मेरी बहन एन एलिसन कोक्स।

इनके अलावा, मैं उनके प्रति भी आभार व्यक्त करना चाहती हूं और धन्यवाद ज्ञापित करना चाहती हूं जिन्हें मैं मित्र और साथी दोनों ही मानती हूं क्योंकि हम समान राजनीतिक लक्ष्यों में और मानवता के भविष्य की समान उम्मीदों में सहभागिता करते हैं। इनमें से कुछ व्यक्तियों से मैं व्यक्तिगत तौर पर कभी नहीं मिली, हालांकि मेरे लिए वे हमेशा मित्र और 'हृदय के साथी' रहेंगे। कुछ वे हैं जिनसे मिलने का और जिन्हें व्यक्तिगत रूप से जानने का मुझे सौभाग्य मिला। लेकिन चाहे व्यक्तिगत तौर पर या फिर पत्रव्यवहार द्वारा इन व्यक्तियों ने मुझे सहयोग दिया या आलोचनात्मक अंतर्दृष्टि प्रदान की या फिर दोनों ही दिए, और मैं उन सबको धन्यवाद देती हूं— डेव्री हिल, ग्लेन रिकोव्स्की, रूथरिकोव्स्की, पीटर मायो, पीटर मैकलारेन, मार्गरेट लेडविथ, हेनरी गिरॉक्स, रिचर्ड ब्रोसेओ, जॉन वालिस, इआन मार्टिन जेन थोम्पसन जॉर्ज लारेन, माइक नियरे, वर्नर ब्रोनफेल्ड, पीटर पेम्स्टन, केनल बोर्ग, डेव हिल, माइक कोल, माइक न्यूमेन, ग्रिफ फोले, हेलेन रेडेंट्ज, डेनियल शगरनेस्की, रोजी बार, और बहुत ही प्रतिबद्ध और साहसी स्व. केरोलाइन बेन।

बहुत ही विशेष आभार पीटर मायो ग्लेन रिकोव्स्की और पीटर मैकलारेन के प्रति। इन सभी ने इस पुस्तक के निर्माण के विविध चरणों में इसके विभिन्न हिस्सों को पढ़ा और बहुत ही महत्वपूर्ण या कि अपरिहार्य सुझाव दिए। पीटर, ग्लेन और पीटर ने न केवल स्वयं अपने विचारों और लेखन से मुझे प्रेरित किया, बल्कि मेरी पुस्तक के प्रति उनके सहयोग और उत्साह ने मेरी ऊर्जा और आशा को बनाए रखने और इसे अंतिम चरण तक पहुंचाने में जो योगदान किया उसके बारे में वे स्वयं भी अनुमान नहीं लगा सकते। उन्हीं के कारण यह पुस्तक आपके समक्ष है। बहुत बहुत धन्यवाद साथियो।

मैं अपने संपादकों जिन गैरी और हेनरी गिराक्स को भी धन्यवाद देना चाहती हूं जिन्होंने मुझे इस पुस्तक को लिखने के लिए प्रेरित किया और जिनके कठिन परिश्रम और प्रतिबद्धता ने इसके प्रकाशन को संभव बनाया। मैं क्लेरा और एरिक किंग को भी उनकी सहायता और परियोजना के अंतिम चरणों में खपाए गए उनके कौशल के लिए धन्यवाद देना चाहती हूं।

और अंत में नहीं मगर किसी भी तरह कमतर नहीं, मैं अपने सभी पूर्व विद्यार्थियों/शिक्षार्थी साथियों के प्रति गहरा आभार व्यक्त करना चाहती हूं जिन्होंने मेरे साथ उस शिक्षण अनुभव में सहभागिता की जिसका उल्लेख मैंने अध्याय छह में किया है। जैसा कि मैंने उस अध्याय में कहा है, कि जो सदैव एक सामूहिक प्रयास था उसमें से केवल कुछ व्यक्तियों को अलग से चुनना उचित नहीं होगा। हालांकि, इन लोगों का सहयोग और मित्रता कई सालों तक चलते रहे हैं और मैं

उन्हें विशेष तौर पर धन्यवाद देना चाहूंगी। केटी ह्यूज, लिंडा फिंनट रूनी, केथी गिब्सन, केरोल मालिया, जॉन कोन्लोन, मार्टिन होबन, जूली कावनाग, ऐन रिविंग्टन, मारिया कैनेडी, क्लैरा ब्यूनो फिशर, डेविड ब्रेक, डेविड बिलेट, डिपोलेलो नगताने, मार्टिन पम्फेरी और शोको वातनाबे को बहुत-बहुत धन्यवाद।

अंत में, मैं दुनिया भर में फैले अपने उन भाइयों और बहिनों के प्रति आभार व्यक्त करना चाहती हूं जिनको निरंतर पीड़ा और अस्तित्व की कठोर, अमानवीय परिस्थितियां मेरे मन को लगातार कष्ट देती रही हैं, लेकिन समान रूप से मेरे लिए प्रेरणा का गहरा और विविध स्रोत भी रही हैं। जैसा कि फ्रेरे—बहुत से शब्दों में, और कुछ मेरे शब्दों के जुड़ने के साथ—कहते : मैं कभी भी तब तक अधिक पूर्ण मनुष्य नहीं हो सकता जब तक कि वे पूर्ण मनुष्य नही हो जाते।

प्रस्तावना

पूंजीवाद की क्रूर बेहूदगी सर्वत्र विनाश और निराशा की वाहक बनकर समूचे विश्व में पसर गई है। इसका उन्मूलन हमें करना ही है, लेकिन ऐसा करने के लिए सबसे पहले हमें इसे समझने की जरूरत है। यह पुस्तक इसी समझ को निर्मित करने और साथ ही आलोचनात्मक शिक्षा और पूंजीवाद को प्रभावी चुनौती देने में इस शिक्षा की निर्णायक और अनिवार्य भूमिका के बारे में है। मैं इसे तात्कालिक आवश्यकता के भाव के साथ लिख रही हूं क्योंकि दुनिया भर में करोड़ों ऐसे इनसान हैं जो व्यग्रता से इस चुनौती का इतजार कर रहे हैं।

मानवता ने तीसरी सहस्राब्दी में प्रवेश एक ऐसी दुनिया के साथ किया है जिसमें सामाजिक विभाजन, अन्याय और दमन लगातार बढ़ रहे हैं, और पारिस्थितिकी अपने विनाश के विभिन्न चरणों से गुजर रही है। मीडिया में प्रतिदिन हमारे ऊपर पूंजीवादी अतियों की डरावनी छवियों की बौछार होती है। एक मिनट में ही, हमारी मुठभेड़ पहले अकाल और भूख से पीड़ित हजारों लोगों या दुनिया की मलिन नारकीय बस्तियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में से कुछ के लुटे पिटे चेहरे या सूखते सड़ते शरीर दिखाई देते हैं (उनके जिनके लिए भूख जीवन का अपरिहार्य तत्व बन गई है), और फिर अचानक ही इससे पहले कि हम स्थिति की भयावहता या विराटता को समझ पाएं, हमारा ध्यान अतोषनीय रूप से फिजूलखर्च, अति समृद्ध, किसी भी मर्यादा का चीरहरण कर सकने वाले, स्नायु रोगग्रस्त किसी धनपशु की चमकती मगर खोखली मुसकान युक्त वैभव अलंकृत छवि की ओर मोड़ दिया जाता है—यह धनपशु भूमंडलीय उच्च वर्ग के चुनिंदा सदस्यों में से एक होता है। क्या हमेशा यह अपेक्षा की जाती है कि हम इन छवियों के युग्म को, जिन्हें ये चित्रित करता हैं, उन धुर और नग्न विषमताओं को उसी तरह अनदेखा कर दें जिस तरह उनकी वास्तविक जिंदगियों की भिन्नताओं और विषमताओं को अनदेखा कर दिया जाता है और उन पर कोई सवाल खड़ा नहीं किया जाता? क्या यह हमारे अनुकूलन का हिस्सा है उस अनुकूलन का जिसके कारण हम ऐसी अतार्किक और अनैतिक विषमताओं को सहते और स्वीकारते रहते हैं और उन्हें अपनी असामान्यता और अपरिहार्यता की अवधारणा में रचा-बसा लेते हैं? हम इस विसंगति या बेहूदगी को कैसे स्वीकार कर पाते हैं, कैसे इसके साथ रह पाते हैं जबकि पूंजीवाद

लगातार मानवता और धरती पर विनाश और विध्वंस का कहर बरपा कर रहा है? मनुष्य की इस दशा का मानवीय इतिहास के उस बिंदु पर कोइ तार्किक या नैतिक औचित्य नहीं है जब मनुष्यों के पास इतनी क्षमता है कि वे दुनिया के अभाव को दूर कर सकें और किसी भी प्रकार के वंचन का उन्मूलन कर सकें। आज मनुष्य के पास वह क्षमता भी है जिससे पर्यावरण के और अधिक विनाश को रोका जा सके और जो विनाश हो चुका है उसकी अधिकांशत: भरपाई की जा सके। यह क्षमता उन लोगों ने विकसित नहीं की है जो आज अपने निजी सुरक्षा घेरों के बीच समृद्धि के महलों में रह रहे हैं, बल्कि यह आम मनुष्यों की सदियों की प्रवीणता और प्रयासों की परिणति है। यह क्षमता मनुष्य जाति ने विकसित की है, इसलिए इसका उपयोग सभी मनुष्यों की जरूरतों को पूरा करने के लिए किया जा सकता था और साथ ही इससे धरती के स्वास्थ्य को बनाए रखा जा सकता था और उसे सुधारा भी जा सकता था हालांकि जब तक हम पूंजी के आधिपत्य में रहेंगे तब तक मनुष्य की जरूरत और धरती के पर्यावरण को उपेक्षित किया जाता रहेगा।

विनाश और विध्वंस की अंध गली से निकलने का रास्ता उस क्रांतिकारी सामाजिक रूपांतरण की प्रक्रिया के माध्यम से बन सकता है जो पूंजीवाद की बेहूदगी— या पूंजीवाद के कुतार्किक तर्क—के उन्मूलन पर लक्षित हो। आलोचनात्मक शिक्षा इस प्रक्रिया, इसके प्रोत्साहन, और साथ ही इसके निरंतर विकास और विस्तार के पोषण के लिए अनिवार्य है। आलोचनात्मक शिक्षा निश्चित तौर पर, उन बहुत सारे घटकों में से केवल एक है जिनकी आवश्यकता पूंजीवाद को चुनौती दे सकने और बाद में उसका रूपांतरण कर सकने में सक्षम आंदोलन के निर्माण के लिए होगी, मगर यहां आलोचनात्मक शिक्षा का घटक ही इस पुस्तक का केंद्रबिंदु है। आलोचनात्मक शिक्षा के बिना—हालांकि एक विशेष प्रकार की आलोचनात्मक शिक्षा—हम कभी भी ठीक ठीक यह नहीं जान पाएंगे कि वस्तुत: चुनौती किसे देनी है, न हमारे पास वह स्पष्ट समझ होगी कि हमें किस चीज का रूपांतरण करना है जिससे हम संपूर्ण मानव जाति के लिए सामाजिक और आर्थिक न्यायपूर्ण भविष्य का निर्माण कर सकें।

क्रांतिकारी सामाजिक रूपांतरण की प्रक्रिया अनिवार्यत: दिलों, दिमागों और लोगों के सामाजिक संबंधों में घटित होनी चाहिए, और इस अर्थ में यह शुरू हो चुकी है। विश्व के विभिन्न स्थानों पर अनेकानेक व्यक्तियों और समूहों ने पूंजीवाद को चुनौती देना शुरू कर दिया है। कुछ मामलों में वे उन संघर्षों को भी चला रहे हैं जो पूंजीवाद के उदय के साथ ही शुरू हो गए थे, दूसरे मामलों में कुछ ऐसी चुनौतियां खड़ी की गई हैं जो पूंजी के सर्वाधिक नए और विनाशक आविर्भाव

नवउदारवाद पर लक्षित है। लगातार बढ़ते असंतोष के प्रत्युत्तर में, हमें लगातार उस विचारधारात्मक छलावे की घुट्टी पिलाई जाती है जो हमारी सहमति जुटाने के लिए या फिर हमारा समर्पण कराने के लिए तैयार किया गया है। 'वैयक्तिकता की मृत्यु' या 'इतिहास का अंत' जैसे नारे हमारी चिंताओं को चुप कराने और हमारी उम्मीदों को बुझाने के लिए उछाले जाते है। हमसे कहा जाता है कि हम 'सूचना युग' और 'उत्तर आधुनिक' युग के नए यथार्थ में प्रवेश कर रहे हैं, इसलिए हमें धैर्य रखना चाहिए और स्वयं को लचीला बनाना चाहिए। हमें भेड़ों के झुंड की तरह केवल एक अपरिहार्य निष्कर्ष की ओर धकेला जा रहा है कि हम यह निष्कर्ष निकाल लें कि पंजीवाद का कोई विकल्प नहा है। यह स्पष्ट करके कि पूजीवाद कैसे काम करता है, कैसे यह बढ़ता और विकसित होता है, और अपनी वृद्धि और विकास को बनाए रखने के लिए इसे किन तत्वों की जरूरत होती है मै इसके विचारों की विचारधारात्मक नींव का खुलासा करना चाहूंगी और पूजी के अस्तित्व को बचाए रखने में ये विचार क्या भूमिका अदा करते हैं, इसका भी खुलासा करना चाहूंगी।

मै इस आधार वाक्य से अपनी बात शुरू करूंगी कि पूजीवाद का सामाजिक और आर्थिक तौर पर न्यायपूर्ण और वास्तविक लोकतांत्रिक विकल्प सभव है, लेकिन यह विकल्प केवल उन्हीं लोगों द्वारा तैयार किया जा सकता है जो यह समझते हैं कि पूजीवाद क्यो लगातार संकट की ओर ले जाता है और क्यों आवश्यकतावश यह केवल एक छोटे से वर्ग के लिए संपत्ति उत्पादित करने के लिए बाध्य होता है और क्यों विशाल मानव समुदाय को अंतहीन असुरक्षा, स्थायी गरीबी और अभाव की ओर ले जाता है। और उन लोगों द्वारा भी विकल्प तैयार किया जा सकता है जो यह समझते हैं कि पर्यावरण विनाश के इसके तरीके क्यों अनिवार्यतः अतिरिक्त लाभ कमाने से जुड़े हैं। मनुष्य जाति और धरती का भविष्य इसी समझ पर निर्भर करता है। इसीलिए आलोचनात्मक शिक्षा—या जिसे मैंने इस पुस्तक में क्रांतिकारी आलोचनात्मक शिक्षा कहा है—की एक भूमंडलीय प्रक्रिया की जरूरत है। इससे पहले इस तरह की शिक्षा के लिए स्थितिया कभी भी इतनी अनुकूल नहीं रहीं क्योंकि पंजीवाद की अंतर्विरोधी और विसंगतिपूर्ण प्रवृत्ति इससे पहले कभी भी इतनी उजागर नहो हुई। मेरा तर्क यह है कि पूजीवाद को चुनौती देने के सभी प्रयास—छोटे या बड़े—प्रकृति से शिक्षात्मक होने चाहिए। जैसा कि अंतोनियो ग्राम्शी जोर देते हैं (1971), पूंजीवाद एकाधिपत्य—यानी वर्चस्व के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक रूप और इनके कारण हमारे जीवन की विकृत दशाएं—के विरुद्ध संघर्ष के दौरान निर्मित प्रत्येक सामाजिक संबंध एक शिक्षात्मक संबंध, परस्पर सीखने का एक अन्योन्याश्रित संबंध होना चाहिए (पृ. 350)। आलोचना

शिक्षा का तात्पर्य भिन्न लोगों के लिए भिन्न है, लेकिन इस पुस्तक में मैंने इसका प्रयोग उस शिक्षा के संदर्भ में किया है जो लोगों को क्रांतिकारी सामाजिक रूपातरण में शामिल होने के लिए तैयार करने पर लक्षित है, और यह अपने आपमें क्रांतिकारी सामाजिक रूपांतरण का एक रूप है। यही कारण है कि मैं लगातार इसका प्रयोग क्रांतिकारी आलोचनात्मक शिक्षा के अर्थ में कर रही हूं। मैं आलोचनात्मक शिक्षा के प्रति एक ऐसे दृष्टिकोण को प्रस्तावित कर रही हूं जो हमारी रूपातरकारी रणनीतियां और संघर्षो के भीतर एक केंद्रीय तत्व की तरह काम कर सकता है हालांकि मेरा इरादा यह सुझाने का नहीं है कि यही एकमात्र दृष्टिकोण है। इसे, जैसा कि मैं उम्मीद करती हूं, सभी मनुष्यों के बेहतर भविष्य के प्रति समर्पित शिक्षकों के बीच शीघ्र ही तीव्र गति से विकसित होने वाले भूमंडलीय संवाद के लिए प्रस्थान बिंदु के बतौर प्रस्तुत किया गया है।

मैं इस आधार बिंदु से भी शुरू कर रही हूं कि पूंजीवाद के रहस्य को खोलने और पूंजी के 'मूल्य' को उद्घाटित करने का एकमात्र रास्ता कार्ल मार्क्स के लेखन की व्याख्यात्मक शक्ति से होकर ही गुजरता है। मार्क्स ने, आज की भाषा मे पूंजी के रहस्य को एक सदी पहले ही 'उजागर' कर दिया था, लेकिन उनकी व्याख्या को न केवल उनके आलोचकों द्वारा बल्कि बहुत से समाजवादियों और स्वयं मार्क्सवादियों के एक वर्ग द्वारा भी, उपेक्षित किया गया था, गलत ढंग से व्याख्यायित किया गया। इन मिथ्या व्याख्याओं पर चलना करोड़ों लोगों की जिंदगियों के लिए केवल विनाश और खतरे पैदा करना है। मार्क्स के अर्थशास्त्रीय पाठों के माध्यम से अपना रास्ता तैयार करना एक बहुत ही सार्थक या लाभदायी काम है, लेकिन साथ ही यह एक समय साध्य काम है जो पहली दृष्टि में बहुत ही हतोत्साहित करने वाला प्रतीत होता है। अपनी एक पिछली पुस्तक (ऑलमान, 1999) मे मार्क्स के विचारों का परिचय प्रस्तुत किया था जिसका उद्देश्य पाठकों को इस काम को हाथ में लेने के लिए प्रेरित करना था और साथ ही उनके विचारों को ऐसे रूप में प्रस्तुत करके जिससे उनका पाठ अधिक बोधगम्य बने, इसे कम निरुत्साहपूर्ण बनाना भी था। इस पुस्तक का उद्देश्य इस प्रकार का परिचय प्रस्तुत करना भी था जो उनकी सहायता करे जो इस समय आगे तो नहीं बढ़ सकते थे हालांकि उनका शैक्षणिक कार्य पूंजीवादी यथार्थ की आलोचनात्मक समझ बढ़ने से अधिक लाभदायी हो सकता था। और इस तरह उन्हें उसका जिसे पाओलो फ्रेरे 'दुनिया का आलोचनात्मक पाठ' कहते हैं, पहला अध्याय उपलब्ध हो सकता था। इस पुस्तक में, मैं पाठकों को एक अपेक्षाकृत कठिन यात्रा में शामिल होने के लिए आमंत्रित करती हूं, ऐसी यात्रा जो उन्हें भूमंडलीय पूंजीवाद की दुनिया को इस आलोचनात्मक ढंग से पढने की दिशा में पर्याप्त दूरी

तक ले जाएगी—वस्तुतः इतनी दूर कि वे पूंजीवाद के बेहूदेपन को पूरी तरह से पकड़ सकें और यह समझ सकें कि यदि यह बेहूदापन सामाजिक और आर्थिक अन्याय और प्रभुत्व की इस आंतरिक तौर पर संकटप्रद और सर्वग्रासी व्यवस्था के साथ इसी तरह जुड़ा रहता है तो मानव जाति का बच सकना असंभव हो जाएगा। इसलिए, आवश्यकतावश मैं उस सिद्धांत के एक स्तर की भी विवेचना करूंगी जिसे कुछ लोग नितांत दुरूह मानते हैं। और मुझे पूरा विश्वास है कि वे पाठक भी जो मार्क्स से पूरी तरह अनभिज्ञ हैं, इसे परिश्रम साध्य या अनावश्यक रूप से कठिन और सिद्धांत बोझिल नहीं पाएंगे। जैसा कि मेरी पहली पुस्तक के साथ था, मैं अपनी व्याख्याओं को द्वितीयक स्रोत-सामग्री वाले लेखकों (वे लेखक जिनकी सामग्री मूल स्रोत से न आकर दूसरे लेखकों की पुस्तकों से आती है) के विरुद्ध तर्क के रूप में प्रस्तुत नहीं करना चाहती क्योंकि मेरा मंतव्य मार्क्स के विचारों और सैद्धांतिक व्याख्याओं को संभवतम स्पष्टता के साथ सीधे पाठक तक पहुंचाने का है। मैंने अपने विद्यार्थियों से बहुत पहले ही यह सीख लिया था कि कुछ पाठ केवल इसलिए अत्यधिक सैद्धांतिक, और इसलिए दुरूह, हो जाते हैं क्योंकि लेखक दूसरे लेखकों के साथ विमर्श और विवाद में उलझने के लिए पाठकों के साथ अपने संवाद को भंग कर देते हैं। इसलिए, मेरा मंतव्य मार्क्स को—या अधिक स्पष्टतः उनकी पूंजीवाद की व्याख्या को—बिना किसी ऐसी बाधा से संप्रेषित करना है।

मार्क्स के आर्थिक पाठों की व्याख्या, जो यहां प्रस्तुत है, एक विशेष परंपरा में आती है। उस परंपरा में जो उनकी कृतियों के द्वंद्वात्मक पाठ पर आधारित है। जैसा कि मिलोनाकिस ने कहा है (1977), यह अभिगम—यानी कि मार्क्स का द्वंद्वात्मक पठन—एक दीर्घ और सम्मानित परंपरा है। (हालांकि) यह अन्य अभिगमों (दृष्टिकोणों) के सुसमंजित विकल्प के तौर पर वास्तव में नहीं उभर पाई है (पृ. 303)। फिर भी, यह ऐसी परंपरा है जिसके उद्गम को मार्क्स के जीवनपर्यंत मित्र और सहयोगी फ्रेडरिक एंगेल्स में तलाशा जा सकता है, जो प्रकृति के बारे में अपने स्वयं के लेखन में द्वंद्वात्मक तर्कणा को उससे भी आगे ले गए हैं जितने के बारे में स्वयं मार्क्स ने सोचा था—यानी द्वंद्वात्मक चिंतन के मार्क्स के विशिष्ट रूप के बजाए वह जर्मन विद्वान जी.डब्ल्यू.एफ. हीगेल के लेखन में आई द्वंद्वात्मक विचार पद्धति के अधिक करीब दिखाई देते हैं। मार्क्स के बहुत से व्याख्याकार उनकी प्रारंभिक रचनाओं की द्वंद्वात्मक प्रकृति को पहचानते हैं, लेकिन यह सोचते हैं कि द्वंद्वात्मक चिंतन या अवधारणा कुछ ऐसी अवधारणा थी जिससे वे अलग होते गए या जिसका प्रयोग उन्होंने अपने अर्थशास्त्र में केवल गौण रूप में किया। यह सोच सिद्धांत और व्यवहार दोनों के लिए विनाशक परिणामों की ओर ले गया है और यह

एक परेशान करने वाली स्थिति है क्योंकि मार्क्स स्पष्टत: कहते हैं कि पूंजीवाद के उनके विवेचन के लिए द्वंद्वात्मक अवधारणा आधारभूत है (मार्क्स, 1873. पृ 102, मार्क्स, 1867)।

इसका एक कारण कि द्वंद्वात्मक परंपरा अपेक्षाकृत ढीली क्यों बुनी गई है या इसमें सुसंगति क्यों नहीं है यह है कि इस परंपरा में आने वाले बहुत से व्यक्तियों ने मार्क्स को स्वयं उनकी अपनी द्वंद्वात्मक अवधारणा के आधार पर विवेचित करने के बजाए हीगेल की द्वंद्वात्मक अवधारणा के आधार पर व्याख्यायित करने का प्रयास अधिक किया है। दोनों के बीच वैशिष्ट्य महत्वपूर्ण है मगर भ्रमित करने वाला भी है जैसा कि इस तथ्य से उजागर होता है कि एंगेल्स इससे अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं कि प्रकृति के अपने अध्ययन में वह एक अधिक व्यवस्थित और अमूर्त हीगेलवादी अवधारणा की ओर खिसक गए हैं। और लेनिन और माओ जो एंगेल्स की तरह मार्क्स की तर्ज पर स्पष्टत: भौतिकवादी चिंतक थे द्वंद्वात्मक चिंतन को लागू करने में कभी कभी मार्क्स के बजाए हीगेल के अधिक नजदीक प्रतीत होते हैं। मार्क्स स्वयं को हीगेल के प्रति ऋणी मानते हैं लेकिन उन्होंने स्पष्टत यह प्रदर्शित किया था कि वह हीगेल के दार्शनिक आदर्शवाद से आगे गए हैं या उससे परे हटे हैं। हीगल और मार्क्स के द्वंद्वात्मक दृष्टिकोणों में उल्लेखनीय भिन्नताए मुख्यत दो क्षेत्रों में हैं। हीगेल का द्वंद्वात्मक दर्शन विचारों के संचलन और विकास को स्पष्ट करता है और यह बताता है कि कैसे ये विचार यथार्थ, या भौतिक, विश्व के ऐतिहासिक प्रकटीकरण का निर्धारण करते हैं, जबकि मार्क्स का द्वंद्वात्मक दर्शन पूंजीवाद के भौतिक यथार्थ के संचलन और विकास से संबंधित है, यानी उन संचलनों और विकासों से जो मनुष्यों द्वारा सक्रियता से अपने भौतिक विश्व का उत्पादन करते समय पैदा होते हैं और इसके साथ ही वे अपनी चेतना को भी पैदा करते हैं। दूसरे शब्दों में हीगेल के अनुसार, द्वंद्वात्मक नियम अमूर्त और मानवीय मंतव्य और व्यवहार से अलग होते हैं। जबकि मार्क्स के लिए द्वंद्वात्मक संचलन और भौतिक विश्व का खुलाव, ये मूर्त होते हैं और पूरी तरह मानवीय भी—मनुष्य की सक्रियता या कार्यों का परिणाम। मार्क्स के लिए, द्वंद्वात्मक प्रस्तुतीकरण की एक विधि भी है, यह वह तरीका है जिससे वह इस संचलन और विकास को अवधारणा के स्तर पर अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं (मार्क्स, 1873, पृ. 102, मार्क्स में, 1867)। इसके अलावा, हीगेल का द्वंद्वात्मक विचार प्रयोजनवादी है और इस कारण से एक पूर्वनिर्धारित अंत की ओर बढता और उद्घाटित होता है। मार्क्स का द्वंद्वात्मक विचार, दूसरी ओर, खुला हुआ है और ऐसी पारस्परिकता को जगह देता है जिसमें जो तत्व निर्धारित करता है उसी समय वह तत्व निर्धारित और

नियंत्रित भी होता है, इस तरह ऐसा कोई परिणाम नहीं होता जो अपरिहार्य और अपरिवर्तनीय हो।

एक और कारक जो इस परंपरा को ढीलेपन या सुसंगति की कमी की ओर ले जाता है यह तथ्य है कि बहुत से ऐसे लोग जो मार्क्स को उसी तरह द्वंद्वात्मक अवधारणा के प्रस्तुत करते हैं जिस तरह स्वयं मार्क्स चाहते थे। वे द्वंद्ववाद का उल्लेख नहीं करते, और कभी-कभी वे इससे अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं कि उनकी व्याख्या पूंजीवाद की मार्क्स की द्वद्वात्मक समझ से जुड़ी हुई है। लेकिन इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। मार्क्स ने अपनी द्वंद्वात्मकता को पूंजीवाद के भौतिक यथार्थ से प्राप्त किया था। हालाकि, पूंजीवाद की अपनी व्याख्या मे मार्क्स इसकी द्वद्वात्मक प्रकृति का विशिष्टता मे उल्लेख नहीं करते, वह इसे प्रस्तुत भर करते हैं। इसलिए, ऐसा हो सकता है कि वे जो द्वंद्वात्मकता का उल्लेख नहीं करते मार्क्स के ही मार्गदर्शन का अनुसरण कर रहे हैं। यह भी पूरी तरह संभव है कि वे द्वद्वात्मकता का इसलिए उल्लेख न कर रहे हों ताकि वे अपनी व्याख्याओं की हीगलवादी अभिव्यंजना को टाल सकें। मुझे डर है, हालांकि कि अगर यही कारण है तो वे मार्क्स का अनिष्ट कर रहे हैं। मेरा विचार है कि मार्क्स के आर्थिक पाठों को सम्यकता से समझने के लिए द्वंद्वात्मक अवधारणा एक कुंजी है और इसी के द्वारा पूंजीवाद की उनकी समग्र व्याख्या को ग्रहण किया जा सकता है। और मैं उनकी व्याख्याओं को एक ऐसे तरीके से विवेचित कर रही हूं जो उनके द्वंद्वात्मक प्रस्तुतीकरण के न केवल अनुसार है बल्कि उसे प्रमुखता से उभारता भी है।

यह ध्यान में रखते हुए कि मैंने क्या कहा है, मैं कुछ ऐसे लोगों को उद्धृत करना चाहती हूं जो मेरे विचार से इस परपरा में केंद्रीय महत्व रखते हैं। मार्क्स का पूंजीवाद की व्याख्या के विवेचन में जहां मैंने उचित समझा है उन लेखकों का उल्लेख किया है या उनका संदर्भ किया है जो मेरे विवेचन के किसी एक विशिष्ट पहलू से न केवल सहमति रखते हैं बल्कि अपने लेखन में भी जिस पर उन्होंने बल भी दिया है। सामान्यत: जिनका मैंने उल्लेख किया है, उन्होंने मेरी इस काम में पर्याप्त सहायता की है कि मार्क्स के लेखन के किन पहलुओ पर जोर दिया जाना चाहिए। इस पक्ष पर भी ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि मैं इस परंपरा से मार्क्स के अध्ययन के पश्चात ही अवगत हुई, न कि उसके पूर्व। इसलिए, अपवादस्वरूप पहले उन दो लोगों को छोड़कर जिनका मैंने उल्लेख किया है, शेष लेखकों ने मार्क्स की मेरी मूल व्याख्या को प्रभावित नहीं किया। ये डेरेक सेयर (1983, 1987) और जार्ज लारेन (1979, 1983) की रचनाएं थीं जिन्होंने मुझे मार्क्स के अपने अध्ययन के लिए प्रोत्साहित किया और इन्होने इस अध्ययन में मेरी पर्याप्त मदद भी

की। मैं मार्क्स की उनकी व्याख्याओं को द्वंद्वात्मक परंपरा में रखती हूं, हालांकि मैं सुनिश्चित नहीं हूं कि क्या दोनों में से कोई भी इस पर सहमत होगा। हालांकि, इस परंपरा के कुछ प्रारंभिक सदस्यों को इस पर कोई हिचक नहीं होगी—उदाहरण के लिए, रोजा लक्समबर्ग, जार्ज लूकाच, अंतोनियो ग्राम्शी और इजाक आई. रूबिन। और यही बात कुछ बाद के मार्क्सवादियों पर भी समान रूप से लागू होती है— विशेष तौर पर कारेल कासिक, सी.एल.आर. जेम्स, रया डुनयेव्स्काया और रोमन रोजडोल्स्की। जिन समकालीन मार्क्सवादियों को मैं इस परंपरा में रखना चाहती हूं, और जिनकी व्याख्याएं मेरी अपनी व्याख्याओं के किसी एक या दूसरे पहलू से साम्य रखती हैं, उनमें सेयर और लारेन के अलावा बर्टेल ओलमान, डेविड हार्वे, मोशे पोस्टोन, एलेक्स कालिनिकोस, पीटर ह्यूडिस, क्रिस्टोफर आर्थर, टोनी स्मिथ और थामस सेकिन आते हैं। ऐसे समकालीन मार्क्सवादी भी हैं मार्क्स कि जिनकी द्वंद्वात्मक व्याख्याएं इतिहास के उनके विश्लेषण और राजनीतिक अर्थव्यवस्था के उनके समकालिक अध्ययनों के बारे में सूचित करती है —इनमें एलेन मैकसिन-सवुड स्व. ई पी थोमसन डेविड मैकनेली, बेन फाइन, डिमिट्रिस मिलोनाकिस, और बर्नर बोनफेड और जान होलोवे हैं, और साथ ही 'कान्फ्रेंस ऑफ सोशलिस्ट इकनामिस्ट्स' के अन्य सदस्य भी हैं जो 'खुला मार्क्सवाद' शीर्षक के अतर्गत लिखते हैं। लेकिन यह सूची किसी भी तरह पूरी नहीं है। यह सामान्यत: उन लोगों की सूची है जिन्होंने समकालीन पूंजीवाद के बारे में मेरी समझ का विस्तार किया है। मैंने इसे केवल अपने विश्लेषण को एक विशेष ढांचे में स्थापित करने के लिए शामिल किया है और साथ ही उन सबका आभार प्रकट करने के लिए भी जिन्होंने किसी न किसी रूप में मार्क्स की मेरी व्याख्या के किसी न किसी पहलू को पुष्ट किया है या जिन्होंने इतिहास, विकास या पूंजीवाद की समकालीन प्रकृति के किसी न किसी खास पहलू को और अधिक उजागर किया है।

हालांकि यह पुस्तक प्राथमिक तौर पर मार्क्स की पूंजीवाद की सैद्धांतिक व्याख्या और इसलिए उनके अर्थशास्त्र पर केंद्रित है, हालांकि इसमें उनका चेतना का क्रांतिकारी सिद्धांत सर्वत्र व्याप्त है। यह वह सिद्धांत है जिसका प्रतिपादन उन्होंने पूंजीवाद के अपने आनभविक अध्ययन को हाथ में लेने से पूर्व किया था। और यह सिद्धांत, 1846 के बाद उन्होंने जो कुछ लिखा, अपने आर्थिक पाठों सहित, उसको आधार प्रदान करता है। मार्क्स की पूंजीवाद की व्याख्या केवल लोगों के आर्थिक संबंधों और व्यवहार की ही व्याख्या नहीं है। यह समान रूप से और महत्वपूर्ण तौर पर इस बारे में भी है कि लोग अपनी भौतिक दशाओं और गतिविधियों के बारे में एक खास तरीके से सोचने के लिए प्रवृत्त क्यों होते हैं—उस तरीके से जो

पूंजीवादी व्यवस्था को चिरकालिक बनाने और उसे सीमित रखने में मदद करता है। चेतना पर मार्क्स का जोर उन कारणों में से एक है कि पूंजीवाद की उनकी व्याख्या आलोचनात्मक शिक्षकों के लिए इतनी आवश्यक क्यों है। इसके अलावा, यह चेतना का क्रांतिकारी सिद्धांत ही है जो आलोचनात्मक शिक्षा को क्रांतिकारी सामाजिक रूपांतरण के लिए लक्षित सभी संघर्षों के लिए एक इतनी अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता बनाता है। मैंने इस सिद्धांत की विवेचना पर्याप्त विस्तार के साथ अन्यत्र की है (ओलमान, 1999) और उस विवेचना के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्षों की इस पुस्तक के पांचवें अध्याय में पुनरावृत्ति की है। हालांकि, मार्क्स के चिंतन में, और परिणामतः इस पुस्तक में, इस सिद्धांत की केंद्रीयता के कारण, यहां इस बिंदु पर भी इस सिद्धांत के महत्वपूर्ण अवयवों के बारे में कुछ परिचयात्मक टिप्पणियां करना आवश्यक है। इन टिप्पणियों को करने के लिए, मुझे कुछ प्रत्ययों या संकल्पनाओं का प्रयोग करना पड़ेगा जिनका कुछ अर्थ तब स्पष्ट होगा जब मैं आगामी अध्यायों में उनकी विस्तार से चर्चा करूंगी।

मार्क्स ने सबसे पहले चेतना के इस सिद्धांत का उल्लेख उस पुस्तक में किया था जिसे उन्होंने एंगेल्स के साथ मिलकर लिखा था (मार्क्स और एंगेल्स, 1846)। यह वह किताब थी जो दुर्भाग्यवश 1932 तक प्रकाशित नहीं हो पाई थी। चेतना का उनका सिद्धांत मानव व्यवहार और चेतन विचार के बीच एक आंतरिक जुड़ाव या सबंध की संकल्पना करता है। जैसा कि मार्क्स के सभी सैद्धांतिक प्रतिपादनों के साथ है, यह संबंध निर्धारक संबंध नहीं होता बल्कि अपेक्षाकृत द्वंद्वात्मक संबंध होता है—ऐसा संबध जिनमें ऐंद्रिक मानवीय गतिविधि और विचार के बीच पारस्परिकता रहती है, और जिसमें संबंध के भीतर का प्रत्येक अवयव पारस्परिक तौर पर दूसरे अवयव को आकार देता है और उससे आकार प्राप्त भी करता है। इस अर्थ में कि मार्क्स विचार और व्यवहार के बीच एक अपृथक्करणीय अन्विति का प्रतिपादन कर रहे हैं उनका चेतना का क्रांतिकारी सिद्धांत वस्तुतः आचरण का (सिद्धान्त को व्यवहार में उतारने का) सिद्धांत है (ओलमान, 1999) हालांकि, यह एक ऐसा सिद्धात भी है जो आचरण के दो बहुत ही भिन्न रूपों को समाविष्ट किए हुए है और यहीं शिक्षकों के लिए इसका निर्णायक निहित है।

'आचरण' या अनुशीलन (प्राक्सिस) एक ऐसा पद है जिसका प्रयोग सिद्धांत से व्यवहार तक की क्रिया को क्रमिक तौर पर योजित होने के अर्थ में किया जाता है। इसके विपरीत, मार्क्स का चेतना / आचरण का सिद्धांत समस्त विचार और व्यवहार को घनिष्ठता से और आंतरिक तौर पर संबद्ध करता है। और इसका निहितार्थ यह है

कि जब हम केवल उन भौतिक दशाओं और संबंधों में प्रवेश करते हैं जो हमें सहज उपलब्ध होते हैं और हम उन्हें प्राकृतिक और अपरिहार्य मान कर स्वीकार कर लेते हैं तो हम आचरण के उस रूप में संलग्न हो रहे होते हैं जो अनालोचनात्मक और परिणामतः पुनरुत्पादक होता है। यहां तक कि उस समय भी जब हम किसी सामाजिक संबंध के भीतर कभी अपनी स्थिति का प्रतिरोध करते हैं, तब भी जब तक हमारा प्रतिरोध उसी संबंध के भीतर अपनी स्थिति को सुधारने या बदलने का होता है, हम आचरण के उसी अनालोचनात्मक पुनरुत्पादक रूप में ही फंसे होते हैं। दूसरी ओर, जब हम स्वयं संबंध की बाध्यकारी प्रकृति के प्रति आलोचनात्मक तौर पर जागरूक हो जाते हैं और जब हम इस संबंध पर केंद्रित कर अपनी ऊर्जाओं को इसके उन्मूलन या रूपांतरण में लगा देते हैं तो आचरण एक आलोचनात्मक और क्रांतिकारी रूप ग्रहण कर लेता है। दूसरे शब्दों में, आलोचनात्मक/क्रांतिकारी आचरण तब शुरू होता है जब हम अपनी भौतिक दशाओं और अपने सामाजिक संबंधों की द्वंद्वात्मक या आंतरिक तौर पर संबद्ध प्रकृति को आलोचनात्मक तरीके से समझने लगते हैं। यह आचरण पूर्ण विकसित तब होता है जब हम इन दशाओं और संबंधों को उन्मूलित या रूपांतरित करने का प्रयास करते हैं और उनकी जगह ऐसे संबंधों को स्थापित करना चाहते हैं जो सामाजिक और आर्थिक तौर पर एक न्यायपूर्ण समाज के निर्माण में हमारी मदद कर सकें—एक अधिक मानवीय समाज की स्थापना में जिसमें सभी मनुष्य, मनुष्य के रूप में अपनी संपूर्ण क्षमताओं का उपयोग कर सकें। ऐसा करने में, हम अपनी आलोचनात्मक और रचनात्मक क्षमता को अवमुक्त करते हैं और अपनी आलोचनात्मक मेधा का विस्तार करते हैं—यानी अपने यथार्थ और स्वयं अपने बारे में अपनी आलोचनात्मक समझ का।

यहां यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि मार्क्स का चेतना / आचरण का क्रांतिकारी सिद्धांत विचारधारा की एक नकारात्मक संकल्पना करता है (लारेन, 1983)। 'विचारधारा' या 'विचारधारात्मक' का आशय किसी भी ऐसे विचार, व्यवहार या प्रतीक से होता है जो यथार्थ की हमारी द्वंद्वात्मक समझ को विकृत करता है। यह संकल्पना 'मिथ्या चेतना' की नहीं है, जिसे प्रायः गलत तरीके से मार्क्स से जोड़ा जाता है। एक विचारधारात्मक कथन, उदाहरण के लिए, हमारे यथार्थ के उन पहलुओं को अभिव्यक्त करता है या उनका उल्लेख करता है जो सत्य या वास्तविक होते हैं, लेकिन वे केवल आंशिक तौर पर ही सत्य होते हैं या उस यथार्थ के खंड मात्र होते हैं जिसे हम तब तक पूरी तरह नहीं समझ सकते जब तक कि हम उसे उसकी समग्रता में समझने की कोशिश न करें। वे सत्य को विकृत बनाते हैं और इस तरह हमें एक स्थिति को पूरी तरह समझने से रोकते हैं—दूसरे शब्दों में, वे हमारे

सोच को किन्हीं निश्चित परिधियों या मानकों के भीतर ढाचाबद्ध करने की प्रवृत्ति रखते हैं (हाल, 1982)। हालांकि, क्योंकि वे किसी वास्तविक वस्तु को अभिव्यक्त करते हैं या उनसे सदर्भित होते हैं, भले ही यह आंशिक क्यों न हो, वे सामान्यतः हमे यह समझाने में सफल हो जाते हैं कि यथार्थ के जिस संस्करण को वे चित्रित कर रहे हैं वही हमारे यथार्थ का सत्य है। चेतना / आचरण के वे विचारधारात्मक रूप जो पूंजीवादी यथार्थ मे पैदा होने हैं वस्तुतः उस विखंडित तरीके को ही अथ प्रदान करते हैं या अभिव्यक्त करते है जिस तरीके से हम अपने पूजीवादी यथार्थ का अनुभव करते हैं—यानी अपनी द्वंद्वात्मक प्रकृति मे स्थानिक और सामाजिक तौर पर पर कटा हुआ अनुभव। यही कारण है कि वे बहुत ही शक्तिशाली ढंग से, मगर प्रायः सूक्ष्म ढंग से, ऐसे औचित्य की भूमिका निभाते हैं जो अस्तित्व के पूंजीवादी रूप को वैधता प्रदान कर देता है। विचारधारात्मक चिंतन पूजीवादी यथार्थ से बहुत स्वाभाविक तौर पर पैदा होता है और इसलिए इसे अनिवार्यतः किसी प्रणेता की आवश्यकता नहीं होती। मार्क्स ने यह दिखाने के लिए कठिन प्रयास किया कि पूंजीवाद के बहुत से आलोचक भी अपनी परिस्थितियों की विचारधारात्मक समझ की ओर खिंच जाते हैं (उदाहरण के लिए देखिए, मार्क्स, 1863ए, 1863बी और 1863सी)।

मैंने विचारधारा पर विस्तार से विचार आगे के अध्यायों में किया, और इस पर भी विचार किया है कि क्रांतिकारी आलोचनात्मक शिक्षा के लिए विचारधारा की आलोचना महत्त्वपूर्ण क्यों है। मार्क्स के चेतना / आचरण के सिद्धांत का सार प्रस्तुत करने में मुझे, जैसा कि मैंने पूर्व चेतावनी दी थी कई ऐसी संकल्पनाओं का प्रयोग करना पड़ा है जो पूंजीवाद के अवधारणा की द्वद्वात्मक विधि मे सबंधित हैं। लगभग सभी वे संकल्पनाएं जो उनके बौद्धिक प्रतिपादन के किसी अंश को पूरा करती हैं, एक-दूसरे से संबंधित हैं—उदाहरण के लिए, वह कभी कभी एक परिघटना को भिन्न दृष्टिकोण से परखने के लिए हमें आमंत्रित करते समय भिन्न संकल्पनाओं का प्रयोग करते हैं ताकि हम अपनी समझ को अधिक व्यापक बना सकें। इसलिए उनके किसी एक सैद्धांतिक प्रतिपादन पर उनके संपूर्ण सैद्धांतिक ढांचे से काटकर विचार करना लगभग असभव है। इससे पहले कि मार्क्स के चेतना / आचरण के सिद्धांत और उनकी विचारधारा की नकारात्मक अवधारणा पर अधिक विस्तृत विवेचन के लिए अध्याय पांच पर पहुंचूं, इन संकल्पनाओं पर भली भांति विचार किया जा चुका होगा, और इसलिए आलोचनात्मक शिक्षा के लिए उनके सिद्धांत के महत्वपूर्ण निहितार्थों को समझना अधिक आसान हो जाएगा। हालांकि उम्मीद करती हूं, अब तक यह स्पष्ट हो चुका है कि आलोचनात्मक / क्रांतिकारी आचरण

ही आचरण का वह प्रकार है जो आलोचनात्मक शिक्षा के लिए उचित है और यह कि विचारधारा—आलोचना इस आचरण का एक पहलू है।

उस यात्रा को शुरू करने से पूर्व जो उम्मीदतन भूमंडलीय पूंजीवाद को आलोचनात्मक समझ की ओर ले जाएगी, मैं पहले कुछ उन स्थापनाओं को स्पष्ट करके जिनको मैंने प्रयुक्त किया है, और फिर सभी अध्यायों की एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करके, समझने की राह आसान बनाना चाहती हूं।

पहली स्थापना जिसकी ओर मैं आपका ध्यान खींचना चाहती हूं वह है जिसे मैं अनउपेक्षणीय पाती हूं, लेकिन जो अत्यधिक समस्याप्रद और परेशान करने वाली है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण और आधारभूत विचारों में से एक विचार जिसे हम मार्क्स की पूंजीवाद की व्याख्या में से चुन सकते हैं यह है कि पूंजीवाद एक प्रक्रिया और एक संबंध दोनों ही है—यानी मनुष्यों के बीच का सामाजिक संबंध—न कि वस्तु। दुर्भाग्यवश, यदि मुझे, या किसी भी अन्य लेखक को हर बार जब हम चाहते हों, यह स्पष्ट करना पड़े कि यह प्रक्रिया या यह संबंध अमुक कार्य करता है—दूसरे शब्दों में, हर बार यदि हम एक संज्ञा का प्रयोग करना चाहें—तो हमारे वाक्य अत्यधिक बोझिल और अटपटे हो जाएंगे। इसलिए स्थापना सामान्यत: यह कहने की है कि पूंजी ऐसा ऐसा करती हैं; लेकिन निश्चित तौर पर यह समस्याप्रद है क्योंकि इससे पूंजी के मूर्तीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है-—यानी किसी ऐसी स्थिति पर जो वस्तुत: एक सामाजिक संबंध है, वस्तु जैसे पद का आरोपण हो जाता है। इससे भी बुरी बात शायद यह होती है कि इस 'वस्तु' को एक मनुष्य की भांति मंतव्य और क्षमताएं दे दी जाती हैं। जहां तक संभव होता है, मै इस स्थापना के प्रयोग से बचती हूं, लेकिन कभी कभी यह अपरिहार्य हो जाती है, ऐसी स्थिति में में पाठकों से यह आग्रह ही कर सकती हूं कि वे याद रखें कि पूंजी वस्तु नहीं है। कुछ हद तक समस्या तब खड़ी होती है जब हम 'पूंजीवाद' को एक संज्ञा की तरह प्रयुक्त करते हैं। इससे यह विचार बन सकता है कि हम एक ऐसी व्यवस्था के बारे में बात कर रहे हैं जो मनुष्यों और उनके सामाजिक संबधो और व्यवहारों से अलग हो, यह इससे भी अधिक बुरा यह कि जैसे यह कोई इस प्रकार का ढांचा हो—सामाजिक ढांचे के बजाए—जिसकी परिकल्पना हम मानवीय ऐंद्रिक गतिविधि से भिन्न होने के रूप में करें। एक बार फिर जो मैं कर सकती हूं वह पाठकों से आग्रह है कि इन पदों की संकल्पना वे एक भिन्न तरीके से करें—यह समझने के लिए कि पूंजीवाद सबसे पहले हम स्वयं हैं, यानी कि हम मनुष्यगण, उस रूप में जिस रूप में हम अपने प्रकृतस्थ (आदतन) सामाजिक संबंधों और व्यवहारों के जाल या संजाल के भीतर अपने अस्तित्व को बनाए रखते हैं या रहते हैं। मार्क्स का अनुसरण

करते हुए, मैंने भी कभी-कभी 'पूंजी' और 'पूंजीवाद' पदों को अंतर्बदल के साथ प्रयुक्त किया है, हालांकि, मैंने ऐसा केवल तब किया है जब ऐसा करना उचित रहा है, और प्रायः जब मैंने इन पदों का इस्तेमाल एक-दूसरे के लिए किया है तो यह प्रकट करने के लिए कि ये अपृथक्करणीय है—दूसरे शब्दों में, जैसा कि मैं आगे बताऊंगी, पूंजीवाद के बिना पूंजी नहीं होगी।

दूसरी स्थापना एकदम इसकी उलटी है, इस अर्थ में, जैसा कि मैं सोचती हूं, कि यह बहुत अधिक सहायक है। यह वह स्थापना है जिसे मैंने डेरेक सेयर (1987) से लिया है, और जिसने मार्क्स की रचनाओं के अध्ययन में मेरी बहुत मदद की है। जब मैंने मार्क्स का संदर्भ दिया है तो मैं तारीख के प्रयोग में, सेयर की तर्ज पर, स्रोत के उल्लेख में उसी तारीख को दिया है जिसमें मार्क्स अपने इस स्रोत के प्रारंभिक प्रकाशन से पूर्व कार्यरत थे। इस स्थापना के इस्तेमाल से, मार्क्स की रचना का वह ऐतिहासिक संदर्भ पहचानना संभव हो जाता है जिसके अंतर्गत वह रचना की गई थी। मार्क्स की रचनाओं के संदर्भ में तारीखों का इस तरह का इस्तेमाल दो अन्य कारणों से भी महत्वपूर्ण है। पहला, कुछ लेखक, अल्थ्यूसर का अनुसरण करते हुए, मार्क्स के लेखन में स्पष्ट विचलनों की बात करते हैं—उदाहरण के लिए, वे उनकी प्रारंभिक दार्शनिक रचनाओं और उनकी बाद की आर्थिक विषयवस्तु संबंधी रचनाओं में इस तरह से भेद करते हैं जिसका संकेत होता है कि उन्होंने जीवन के इन चरणों में पूरी तरह भिन्न तरीके से संकल्पना की या विचार किया। मैं इस व्याख्या से पूरी तरह असहमत हूं और महसूस करती हूं कि पाठकों के लिए 'विचलन' के विचार के विरुद्ध तर्क प्रस्तुत करने का सर्वश्रेष्ठ तरीका यह देखने में सक्षम होना है कि मार्क्स ने किस समय क्या कहा, और इस तरह उनके विचार की निरंतरता को पहचानने में सक्षम होना है।

दूसरा कारण इस तथ्य से जुड़ा हुआ है कि मार्क्स के कुछ आर्थिक पाठ कभी भी पूरे नहीं हुए--यानी प्रकाशन के लिए स्वयं मार्क्स द्वारा पूरे नहीं किए गए। उन्होंने *कैपीटल* के सभी खंडों का मसौदा लगभग एक ही दौर में तैयार किया, लेकिन उन्होंने पहले खंड को प्रकाशन के लिए तैयार करने में (मार्क्स, 1867) और फिर बाद के संस्करणों को संशोधित करने मे, जाहिरा तौर पर अपने श्रमिक वर्ग के पाठकों के लिए इसे सुगम बनाने के लिए, इतना अधिक समय खपा दिया कि शेष खंड दो (मार्क्स, 1878) और खंड तीन (मार्क्स, 1865) का इसी तरह का कार्य (प्रकाशन, संशोधन) उनके मित्र और सहयोगी एंगेल्स के कंधों पर आ गया। चौथे खंड जिसका मसौदा 1863 तक पूरी तरह तैयार हो चुका था—*थ्योरीज ऑफ सरप्लस वैल्यू* (बेशी मूल्य के सिद्धांत) के नाम से तीन खंड—के प्रकाशन का

दायित्व एंगेल्स के निधन के बाद कार्ल कात्स्की को उठाना पड़ा। इसका महत्व यह है कि मार्क्स पहले खंड के प्रकाशन से पूर्व पूंजीवाद के अपने विश्लेषण को पूरी तरह नियोजित कर चुके थे और इस विश्लेषण को लेखन में उतार चुके थे—कम से कम मसौदा रूप में। इस जानकारी से खंड एक और शेष खंडों के बीच संबंध की हमारी समझ अधिक साफ होनी चाहिए—वह समझ जिसका विवेचन मैंने अध्याय दो में किया है। स्पष्ट समझ विकसित करने में सहायक होने के अर्थ में, जब मैंने सीधे पाठों में से उद्धृत नहीं किया होता है तो मैं संदर्भों से प्राय: पृष्ठ संख्याओं का उल्लेख करती हूं ताकि पाठक उस विचार को आसानी से मूल स्रोत में खोज सकें और इसके बारे में अधिक गहराई से जान सकें या मेरी व्याख्या की परख कर सकें।

अंतिम स्थापना भी जिसका मैं उल्लेख कर रही हूं, सहायक होने के अर्थ में ही। हालांकि, मैं मानती हूं कि कुछ पाठकों की इससे सहमति नहीं हो सकती। जब मैं मार्क्स, ग्राम्शी और फ्रेरे को उद्धृत करती हूं—या फिर इस प्रसंग में किसी भी अन्य लेखक को जिनके बारे में मैं सोचती हूं कि इतर विषयों पर उनके दार्शनिक और राजनीतिक विचारों का औचित्य है—तो मैं लिंग संबंधी उनकी भाषाओं के निहित पूर्वग्रहों को कोष्ठकों में कोई अधिक तटस्थ पद देकर बदल देती हूं। मेयर (1991), जिनके प्रति मेरे मन में गहरा सम्मान है, इस पद्धति की आलोचना करते हैं और इसे अहंकारी संरक्षण का नाम देते हैं। उनका तर्क है कि हमें लोगों की भाषा को आवृत्त करने या उसे परिष्कृत करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए क्योंकि उनके अनुसार, लोग हर चीज को मनुष्यों के सामाजिक अनुभव के अर्थ में देखते हैं। मैं उनके तर्क को समझ सकती हूं, लेकिन मैं यह भी सोचती हूं कि यह मानकर कि हर उस लेखक को जिसने मानव जाति का संकेत देने के लिए दार्शनिक अर्थ में 'मनुष्य' का प्रयोग किया है, एक ही लाठी से हांक दिया जाना चाहिए, हम अति साधारणीकरण के खतरे में पड़ सकते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि कुछ ऐसे लेखक जिन्हें हम 'आधुनिकतावादी' करार देते हैं पश्चिमी सभ्यता के संकुचित क्षितिज और हमारी प्रजाति के केवल पुरुष सदस्यों के अधिक संकुचित अनुभवों के परे देखने में समर्थ थे। दूसरे शब्दों में, यह पूरी तरह संभव है कि जब वे 'मनुष्य' और 'मनुष्य जाति' जैसी स्थापित या पारंपरिक अभिव्यक्तियों का प्रयोग करते थे तो उनका आशय सही तौर पर हर लिंग और आयु के मनुष्यों से होता था। लेकिन सुनिश्चित तौर पर हम नहीं जान सकते। मैंने अपनी स्थापना का प्रयोग उनकी भाषा को केवल शुद्ध करने या तटस्थ बनाने के लिए नहीं बल्कि पूरी तरह एक दूसरे कारण से शुरू किया। मैंने बहुत से ऐसे नारीवादी लेखकों और कार्यकर्ताओं को देखा है जो मार्क्स, ग्राम्शी और फ्रेरे की कृतियों को उनकी भाषा में पुरुष पूर्वग्रह होने की

बिना पर ही निरस्त कर देते हैं। हालांकि बैल हुक्स (1993) जैसे नारीवादी लेखक भी हैं जो इस समस्या को बहुत विवेक और सहानुभूति से संभाल लेते हैं, लेकिन मुझे हमेशा ही यह उचित प्रतीत होता रहा है कि इस झगड़े में न फंसा जाए और जब मानवीय दमन के सभी रूपों के उन्मूलन का सवाल हो तो अत्यधिक प्रतिउत्पादन और आत्मपराजयी स्थिति द्वारा अपने आपको विचिलत न होने दिया जाए। इसलिए सेयर द्वारा रखे गए बिंदुओं को ध्यान में रख, सभी पहलुओं पर विचार करते हुए, मैंने ऐसे सर्वनामों को जिनके कारण पाठक उन लोगों के मानव-मुक्ति के क्षेत्र में किए गए मूल्यवान योगदान की उपेक्षा कर सकते हैं, कोष्ठकबद्ध करने की स्थापना से जुड़े रहने का निर्णय लिया है। मैं शीघ्रता से यह भी जोड़ना चाहती हूं कि मैं इस स्थापना का प्रयोग उस समय भी करूंगी जब मैं, उदाहरण के लिए, रोजा लक्समबर्ग, या आधुनिक युग की किसी भी महान महिला चिंतक को उद्धृत कर रही हूंगी।

आप यह जानकर खुश हो सकते हैं कि यह भूमिका लगभग पूरी हो गई है। मुझे बस पुस्तक की विषयवस्तु का लघु सारांश और जोड़ना है और अपनी यह कामना व्यक्त करती हूं कि पाठकगण अपेक्षाकृत अधिक दुरूह अंशों, और विशेषकर तीसरे अध्याय के उबाऊ मगर आवश्यक गणित के दौरान भी मेरे साथ बने रहेंगे। क्योंकि मैंने गणित का सवाल यहां उठा दिया है इसलिए यह भी बता हूं कि गणित के प्रति मेरी अरुचि एक ऐसी चीज थी जिस पर मुझे मार्क्स की पूंजीवाद की व्याख्या को ठीक से समझने के लिए काबू करना था। क्योंकि मैं अपने जैसे उन सभी लोगों की जो गणितीय कौशल में कमजोर हैं, कठिनाई को समझती हूं इसलिए मैंने उन्हीं आंकड़ों का इस्तेमाल किया है जिनका इस्तेमाल मार्क्स ने किया है ताकि पाठक चाहें तो इनकी पुष्टि कर सकें। मैं- -और यह उन लोगों के लिए थोड़ा खीज पैदा करने वाला हो सकता है जो गणित मे माहिर हैं—उस गणितीय प्रक्रिया को भी स्पष्ट करना चाहती हूं जो मैंने अपने द्वारा उद्धृत आंकड़ों तक पहुंचने के लिए अपनाई है।

अध्याय एक में मैंने कुछ उन निकृष्टतम और साथ ही सर्वाधिक हास्यास्पद विसंगतियों से शुरुआत की है जो भूमंडलीकरण, या पूंजी के पूर्ण सार्वभौमीकरण से पैदा हुई हैं और मैंने इसका भी संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है कि विभिन्न लोग भूमंडलीकरण को किस तरह से व्याख्यायित कर रहे हैं। फिर, अपेक्षाकृत दो (दो और तीन) लंबे अध्याय मार्क्स की पूंजीवाद की व्याख्या को दिए गए हैं। मेरा मंतव्य जैसा कि मैंने पहले कहा था, उनकी व्याख्या का सम्यक और विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना है, ऐसा विवरण जो आपको उम्मीदतन यह समझने में, और दूसरों को समझाने में भी, काफी दूर तक ले जा सकता है कि पूंजीवाद अनिवार्यतः और

अंतर्निहित तौर पर एक भूमंडलीय व्यवस्था क्यों है। यह विवरण यह भी संकेत देता है कि पहले किसी भी समय की तुलना में, क्यों हम इस तरह समाजार्थिक नियंत्रण और प्रभुत्व की एक पूर्णरूपेण अन्तर्राष्ट्रीय और संघटित व्यवस्था बनने की पूंजी की अंतर्निहित आवश्यकता के परिणामों का कष्ट उठा रहे हैं और उसके पूरे प्रभाव को भुगत रहे हैं। यह वही भूमंडलीय व्यवस्था है, जैसा कि बहुत से टिप्पणीकारों को अचानक स्मृत हो आया है, जिसकी भविष्यवाणी मार्क्स और एंगेल्स (1848) ने स्पष्टत: लगभग 150 वर्ष पूर्व की थी।

मार्क्स की व्याख्या का मेरा प्रस्तुतीकरण उसी पद्धति का अनुसरण करता है जिसे मार्क्स ने *कैपीटल* (पूंजी) के अपने तीन खंडों में अपनाया है। यह वह पद्धति है जो पूंजी के अंतर्य के द्वंद्वात्मक प्रकटीकरण या खुलाव की, इसके अंतर्निहित अंतर्विरोधों की, सामान्य पण्य रूप से लेकर इसकी पूर्ण विकसित पूंजीवादी व्यवस्था की, और ऐसा करते समय भूमंडलीकरण का जो स्पष्ट उद्देश्य उजागर होता है उसकी खोज करती है। दूसरे शब्दों में मैं उसी तरीके का इस्तेमाल करूंगी जिस तरीके से मार्क्स ने पूंजीवाद की अपनी द्वंद्वात्मक संकल्पना को प्रस्तुत किया था। बहुत से समाजवादी और कुछ मार्क्सवादी भी स्वीकार करते हैं कि *कैपीटल* के तीन खंडों का अध्ययन और उनको समझना कठिन है। एक अर्थ में वे सही हैं, लेकिन यह मार्क्स का दोष नहीं है और एक तरह से पाठकों का भी नहीं है। *कैपीटल* के तीन खंडों में, मार्क्स एक बहुत ही जटिल व्यवस्था की व्याख्या करते हैं, एक ऐसी व्यवस्था की जो हमारे मूर्त यथार्थ का आधार निर्मित करती है और जिसमें हम प्रतिदिन भागीदारी करते हैं, लेकिन ऐसी व्यवस्था जो ऐसी मूर्त विधियों या प्रवृत्तियों के अनुसार कार्य करती है जिन्हें संकल्पना की केवल उसी पद्धति द्वारा समझा जा सकता है जो व्यवस्था के आंतरिक तत्व या अंतर्निहित अंतर्विरोधों के अनुरूप हो। इस अंतर्तत्व या अंतर्य को प्रत्यक्षत नहीं देखा जा सकता क्योंकि अपने शुद्ध और महज रूप में यह पूंजीवाद के हमारे दैनिक अनुभव में आतीं और शराबे भरी तेज गतिविधियों और इसके द्वारा निर्मित निरंतर विस्तृत होती पण्यों या जिंसों की दुनिया के नीचे छिपा रहता है। हालांकि, यदि हम उस 'कुंजी' का इस्तेमाल करें जो मार्क्स हमारे लिए छोड गए हैं और इससे उनकी व्याख्या की जटिलता और इस तरह पूंजीवाद की जटिलता को खोला जा सकता है—यानी कि हम संकल्पना की द्वंद्वात्मक विधि का प्रयोग या अनुसरण करें—और कठिनाई विलुप्त हो जाती है और पूंजीवाद पूरी नंगी सहजता के साथ उजागर हो जाता है। बस हमसे जो अपेक्षा होती है वह इस 'कुंजी' को समझने और फिर इसको प्रयुक्त करने के लिए थोड़े से अध्यवसाय की होती है—ऐसा अध्यवसाय जिसमें सहयोग देने का मैंने हर संभव

प्रयास किया है और जो, मेरा भरोसा है, उन लोगों तक सहजता से पहुंच सकेगा जो पूंजीवाद की बेहूदगी और क्रूरता के प्रति जागरूक हो चुके हैं।

मार्क्स की पूंजीवाद की व्याख्या के विवेचन के पश्चात मैं अध्याय चार में पूंजीवाद को मिल रही कुछ समकालीन चुनौतियों की पड़ताल करने और यह पता लगाने की ओर बढ़ती हूं, पूंजी की मार्क्स की व्याख्या के आधार पर, कि ये चुनौतियां संभवत: हमारी समस्याओं का समाधान क्यों नहीं हो सकतीं। ऐसे कुछ लोग जो पूंजीवाद में सुधार की बांसुरी बजाते हैं, चुनौती देने वालों में से हैं। इनमें से कुछ सोचते हैं कि बहुत से सामाजिक लोकतांत्रिक सुधार और नीतियां जो अब राष्ट्रीय स्तर पर साध्य या व्यवहार्य नहीं रह गए हैं, अगर भूमंडलीय स्तर पर लागू किए जाएं तो अब भी प्रभावी ढंग से कार्य कर सकते हैं। पूरी पुस्तक के दौरान, मैंने इस पर बल दिया है कि पूंजीवाद को स्थायी तौर पर नहीं सुधारा जा सकता। हमें सुधारों के लिए संघर्ष करना पड़ सकता है ताकि जीवन को कुछ अधिक सहनीय बनाया जा सके, लेकिन पारंपरिक लोकतांत्रिक उपायों द्वारा समाज की बीमारियों का उपचार करना लगातार कठिन होता जाएगा—उस तरह के सरकारी हस्तक्षेप जैसे उपायों द्वारा जिन्हें जान मेनार्ड केन्स के आर्थिक सिद्धांत ने प्रेरित किया था। भूमंडलीय अर्थव्यवस्था में केन्स प्रकार के हस्तक्षेप उसी गति को प्राप्त होंगे जैसे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में हुए थ और संभवत: यह काम अधिक तीव्र गति से होगा। एकमात्र उत्तर, या उत्तर की शुरुआत, केवल क्रांतिकारी सामाजिक रूपांतरण में निहित है।

जैसा कि मेरा स्पष्ट मानना है कि आलोचनात्मक शिक्षा क्रांतिकारी सामाजिक रूपांतरण के लिए आधारभूत है अत: शेष पुस्तक—यानी अध्याय पांच, छह और सात—आलोचनात्मक शिक्षा के विवेचन को अर्पित हैं। अध्याय पांच में मैंने आलोचनात्मक शिक्षा की एक विशेष पद्धति के दर्शन, सिद्धांत और उद्देश्यों की चर्चा की है—उस पद्धति की जिसे मैं क्रांतिकारी आलोचनात्मक शिक्षा कहती हू। अध्याय छह इस शिक्षा के दर्शन को लागू करने और उसे और इसके सिद्धांतों और उद्देश्यों को विकसित करने में हुए अनुभवों के बारे में है—दूसरे शब्दों में, यह उस आलोचनात्मक/क्रांतिकारी आचरण की व्याख्या करता है जिसके माध्यम से मैंने आलोचनात्मक शिक्षा की इस पद्धति को लागू करने और इसको आगे विकसित और परिष्कृत करने का प्रयास किया। और अंतत:, अध्याय सात में मैंने विभिन्न रणनीतियों का सुझाव दिया है जिन्हें आलोचनात्मक शिक्षक अपने-अपने संदर्भों में लागू करना शुरू कर सकते हैं। मैंने यह सुझाव भी दिया है कि हमारी रणनीतियां भूमंडलीय स्तर पर कैसे गठबंधित हो सकती हैं। जिन रणनीतियों और आपसी

तालमेल को मैंने प्रस्तावित किया है, उनका उद्देश्य पूजीवाद के अतत: उन्मूलन और मनुष्य जाति के नए और बेहतर भविष्य की शुरुआत मे योगदान करना है।

मैं केवल यह आशा कर मकती हू कि जो लोग पूजीवाद और अमानवीयता और दमन के अन्य सभी रूपों के उन्मूलन के लिए मेरी प्रतिबद्धता मे भागीदारी करेगे, वे अत तक मेरे माथ रहेगे और मेरे विवेचनो और सुझावो को उमी मतव्य के माथ लेगे जिम मतव्य क साथ वे प्रम्तुत किए गए है—यानी सुनिश्चित समाधानो के तौर पर नही बल्कि समूचे विश्व मे आलोचनात्मक / क्रातिकारी शिक्षा के विकाम और प्रसार म उत्प्रेरक मात्र होने के साथ मे।

संदर्भ

ओलमा। पो (1999) *रिवोल्यूशनरी साशल टासफार्मेशन डेमोक्रेटिक होप्म पालिटिकल पामिबिलि ीज एड क्रिटिकल एजुकेशन* वस्टपोर्ट मीटी बर्जिन एड गार्व

एगल्स एफ (1954) *डाइलेक्टिक्स ऑफ नेचर* माम्को फारेन लग्वेजिज पब्लिशिग हाउम

गाम्शी ए (1971) *मलेक्शस फाम दि प्रिजन नोटबुक्स ऑफ एटोनियो ग्राम्शा* क्विटन हार और ज्याफ्री नावेल म्मिथ द्वारा सपादित और अनूदित लदन लारेस एड विशार्ट

हॉल एस (1982) 'मैर्नाजग कॉन्फ्लिक्ट प्राड्यूम्मिग कन्सेट' यूनिट 21 ब्लॉक ६ म *कफार्मिटी कसमस एड कॉन्फ्लिक्ट डी 102 सोशल माइसेज ए फाउडेशन कोस* मिल्टर केइम यू क ओपन यूनिवर्मिटी प्रेस

हक्स बो (1993) 'बेल हुक्स म्पीकिग अबाउट पाआलो फ्रेरे —दि मैन हिज वर्क' पा मेक्लारेन और पा लिओनार्ड द्वारा सपादित पुम्तक म *पाओला फ्रेरे ए क्रिटिकल एनकाउटर* (पृ 146 154) लदन राउटलेज

लारेन ज (1979) *दि कसेप्ट ऑफ आइडियालॉजी* लदन हचिसन

लारेन जे (1983) *मार्क्सिज्म एड आइडियोलॉजी* लदन मक्मिलन

मार्क्स के (1863ए) *थ्योरीज ऑफ सरप्लस वेल्यू* पार्ट 1 लदन लारेस एड विशार्ट 1969

मार्क्स के (1863बी) *थ्योरीज ऑफ सरप्लस वैल्यू* पार्ट 2 लदन लारेम एड विशार्ट 1969

मार्क्स के (1863सी) *थ्योरीज ऑफ मरप्लस वैल्यू* पार्ट 3 लदन लारेस एड विशार्ट 1972

मार्क्स क (1865) *कैपीटल* वॉल्यूम 3 डेविड फर्नबाख द्वारा अनूदित अर्नेम्ट माडेल द्वारा भूमिका हारमोड्सवर्थ यू के पग्विन 1981

मार्क्स के (1867) *कैपीटल* भाग 1 बेन फाउकेम द्वारा अनूदित अर्नेस्ट मॉडेल द्वारा भूमिका हारमोड्सवर्थ यू के पेग्विन 1981

मार्क्स के (1873) 'पोस्टफेस टू दि सैकिड एडीशन' *कैपीटल* भाग 1 1967 (पृ 94 103) हारमोड्मवर्थ यू के पेग्विन 1976

मार्क्स के (1878) *कैपीटल* भाग 2 डेविड फर्नबाख द्वारा अनूदित अर्नेस्ट मॉडल द्वारा भूमिका, हारमोड्मवर्थ यू क पेग्विन 1978

मार्क्स, के और एंगेल्स, एफ. (1846), *दि जर्मन आइडियोलॉजी*, मास्को : प्रोग्रेस, 1976

मार्क्स, के. और एंगेल्स, एफ. (1848), 'द कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो', डॉ. मैक्लेनान द्वारा संपादित पुस्तक में, *कार्ल मार्क्स : सलेक्टेड राइटिंग्स* (पृ. 221-247), ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1977.

मिलोनाकिस, डी. (1997), 'द डायनामिक्स ऑफ हिस्टरी : स्ट्रक्चर एंड एजेंसी इन हिस्टोरिकल इवॉल्यूशन', *साइंस एंड सोसाइटी*, 61 (नं 2, ऑटम), 302 329.

मेयर, डी. (1983), *मार्क्सेज मेथड : आइडियोलॉजी, माइंस एंड क्रिटीक* इन 'कैपीटल' (द्वितीय संस्करण), ब्राइटन : हार्वेस्टर प्रेम

मेयर, डी (1987), *दि वायलेंस ऑफ एब्स्ट्रेक्शन : दि एनालिटिकल फाउंडेशंस ऑफ हिस्टोरिकल मेटेरियलिज्म*, ऑक्सफोर्ड : बासिल ब्लैकवैल.

सेयर, डी (1991), *कैपीटलिज्म एंड मॉडर्निटी : एन एक्सकर्सेज ऑन मार्क्स एंड वेबर*, लंदन : राउटलेज

अध्याय एक

भूमंडलीय पूंजी और मानवीय स्थिति

नई सहस्त्राब्दी के शुरू करने का बेहूदा तरीका

आलोचनात्मक शिक्षा में संलग्न लोगों का एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वे मौजूदा यथार्थ को समस्यायुक्त बनाएं—जो हो रहा है उसके बारे में कुरेदने वाले सवाल पूछें और यह पूछें कि जो घटनाएं घट रही हैं उन्हें हम किस तरह समझ रहे हैं, उनको लेकर कैसा महसूस कर रहे हैं। यह केवल भाषिक कर्म नहीं है और न यह किसी भोली उत्सुकता पर आधारित है। बल्कि यह यथार्थ को जानने का शिक्षकों और शिक्षार्थियों के 'सहसंकल्पित कर्म' के प्रति उनको आलोचनात्मक उत्सुकता से प्रसूत दायित्व है (फ्रेरे, 1974)। उन शिक्षकों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिए जो आलोचनात्मक शिक्षा की प्रक्रिया शुरू करना चाहते हैं, इससे पहले कि वे यथार्थ को समस्यायुक्त बनाने के कार्य म प्रभावी तरीके से अन्य को शामिल करें, यह आवश्यक है कि वे एक निश्चित स्तर तक स्वयं अपनी आलोचनात्मक समझ विकसित करें। इस अध्याय में उस समझ के लिए मैं एक प्रस्थान बिंदु प्रस्तुत कर रही हूं—पहले समकालीन पूंजीवाद के कुछ उन पहलुओं की ओर संकेत करके जिन्हें व्यापक रूप से प्रलेखित किया गया है, और फिर उन विभिन्न तरीकों की चर्चा करके जिनके माध्यम से इस यथार्थ का—भूमंडलीय पूंजी के यथार्थ को—व्याख्यायित किया जा रहा है। विश्व के बच्चों की दुरावस्था के संबंध में कई प्रकार के तथ्यों का प्राय: उल्लेख किया जाता है, मैं शुरुआत इन्हीं से कर रही हूं।

जो हो रहा है—विसंगति के चित्र

अनुमानत: ऐसे बच्चों की संख्या जो सड़कों पर रह रहे हैं, लगभग दस करोड़ है। इनके लिए इनका आवास या शरण्य या तो कोई गत्ते का डब्बा होता है या फिर किसी घर की देहरी, और करोड़ों और बच्चे ऐसे घरों में रह रहे हैं जहां न पानी मिलता है, न बिजली और न सफाई। विश्व भर के बाल श्रमिकों की विशाल फौज में बीस करोड़ बच्चे शामिल हैं (बर्जर, 1998/99)जिनमें से बहुत से बच्चे थोड़े से

मेहनताने के लिए असुरक्षित, अस्वास्थ्यकर और प्रायः अवैध स्थितियों में घंटों घंटों काम करते हैं। हम जानते हैं कि बहुत से बच्चे अनावश्यक रूप से कुपोषण का शिकार हो रहे हैं, यहां तक कि उन कुछ देशों में जिनकी आधी वार्षिक आय अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक का कर्जा चुकाने में खर्च होती है, हर घंटे एक बच्चा कुपोषण की मौत मर रहा है (पिलगर, 1998)। ये केवल गरीब देशों के ही बच्चे नहीं हैं जो दुरावस्था के शिकार हैं। 'अमरीका में हर पांच में से एक बच्चा गरीबी की रेखा से नीचे जी रहा है।' (हिर्शल, 1997, पृ. 170)। ये और ऐसे ही अन्य बहुत से निराशाजनक आंकड़े बताते हैं कि बहुत से बच्चों के लिए उनका पैदा होना ही भयावह अभिशाप है, और इन आंकड़ों का प्रत्युत्तर दान राशि से दिया जाता है। दान जुटाने के लिए होने वाला ब्रिटेन का 'रेड नोज' दिवस जैसा आयोजन, अपने भले इरादों के बावजूद, उस राशि का अंश मात्र ही जुटा पाता है जो राशि ये गरीब देश प्रतिदिन कर्ज के भुगतान के रूप में पश्चिमी बैंकों को दे देते हैं (पिलगर, 1998)।

शायद समकालीन यथार्थ का सर्वाधिक चर्चित पहलू बहुत अमीर और बहुत गरीब के बीच बढ़ता हुआ अंतर है—समृद्धि और गरीबी का ध्रुवीकरण। पूरी बीसवीं सदी के दौरान टिप्पणीकार दुनिया के विकसित और अल्पविकसित देशों के बीच के विभाजन—यानी केंद्र और हाशिए के बीच के विभाजन—पर ध्यान केंद्रित किए रहे हैं। यह उनकी केंद्रीय चिंता का विषय रहा है, फिर भी देशों के भीतर और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अमीर और गरीब लोगों के बीच ध्रुवीकरण न केवल तेज हुआ है बल्कि प्रत्यक्षतः दिख भी रहा है। उदाहरण के लिए, इस तरह के आंकड़ों को बार बार प्रस्तुत किया जाता है कि दुनिया में अब 350 ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी कुल परिसंपत्तियां एक अरब या उससे अधिक अमरीकी डालर की हैं यानी विश्व के 45 प्रतिशत लोगों की संयुक्त परिसंपत्तियों से भी अधिक (हैरिस, 1998'99, पृ. 29)। मैकग्रेगर के अनुसार (1999, पृ. 94) जिन्होंने अपने आंकडे 1998 की संयुक्त राष्ट्र मानव विकास रिपोर्ट से लिए हैं, दुनिया के पंद्रह सर्वाधिक समृद्ध लोगों की संपत्ति उप सहारीय अफ्रीका की समग्र वार्षिक आय से अधिक है। यही रिपोर्ट यह भी दरशाती है कि आर्थिक सहयोग और विकास संगठन के किसी भी देश की तुलना में अमरीका की प्रति व्यक्ति आय सर्वाधिक है और गरीबी की दर भी यही सर्वाधिक है (मैकग्रेगर, 1999, पृ. 94)।

अधिकतर टिप्पणीकार केवल इस ध्रुवीकरण का ही उल्लेख नहीं करते बल्कि अमीरी और गरीबी के छोरों के लगातार बढ़ रहे फासले का भी उल्लेख करते हैं। दूसरे लोग तत्काल कहने लगते हैं कि इसमें कुछ नया नहीं है, और यह कि इस

समय का ध्रुवीय फासला उन्नीसवीं सदी के ब्रिटेन में नवोदित औद्योगिक श्रमिक वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच के फासले से बड़ा नहीं है। हालांकि, आम तौर पर यह मान लिया गया है कि अंततः सभ्यता कुछ चरण आगे बढ़ गई है और नैतिक कारणों से या फिर विशुद्ध विवेकगत कारणों से आधुनिक राष्ट्र-राज्य अपने बीच इस अतिवादी ध्रुवीकरण को नहीं पनपने देंगे। सही हो या गलत, लेकिन यह मान लिया जा रहा है कि किन्हीं अन्य कारणों से नहीं तो सामाजिक समरसता के मूलभूत स्तर को बनाए रखने के लिए ही, जहां तक संभव हो सामाजिक बहिष्करण को समाप्त कर दिया जाएगा। हटन (1998) ने चिंता जताई है कि कुछ मामलों में दोनों ही अतिवादी स्थितिया—अत्यधिक अमीर और अत्यधिक गरीब—शेष समाज के लिए उपांतिक (मार्जिनल) हो रही हैं। जो संपत्ति / आय के सर्वाधिक उच्च पायदान पर आसीन हैं पूरी तरह अपनी निजीकृत दुनिया में रहते हैं और शेष समाज के बारे में उनकी चिंता लगभग न के बराबर होती है। इनकी संपत्ति की निर्भरता शेष समाज द्वारा उत्पादित और उपभोगित संपत्ति पर क्योंकि निरंतर कम से कम हो गई है इसलिए ये अपनी निजी सुरक्षा मेना के घेरे में बाह्य समाज की हिंसा से पूरी तरह अप्रभावित अपने शानदार, भव्य और सुविधासंपन्न अलगाव में जीते हैं (हटन, 1998, रीख, 1991)। गरीब भी अलगाव में जीते हैं, मगर उनका यह अलगाव विवशताजन्य है। इन्हें बाजार से बाहर कर दिया गया है और परिणामतः समाज और संस्कृति से भी बाहर कर दिया गया है क्योंकि समाज और संस्कृति बाजार के इशारे पर ही नाचते हैं।

प्रौद्योगिकी के क्षेत्र मं हुई क्रांतियों ने, विशेषकर इलेक्ट्रानिक डिजिटीकरण के क्षेत्र में, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हुए परिवर्तनों में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एक भूमंडलीय दूरसंचार संरचना तैयार कर ली गई है जिसने उत्पादन और व्यापार के भूमंडलीकरण को बहुत सुविधाजनक बना दिया है। इससे न केवल भूमंडलीय पूंजीवाद और विश्व बाजार की पहुंच व्यापक हुई है बल्कि उत्पादन और वितरण के व्यापार और व्यावसायिक समय की गति को भी अत्यधिक बढ़ा दिया है। इसका प्रभाव विशेष रूप में वित्तीय पूंजी पर महसूस किया जा रहा है, जहां व्यापार की बढ़ी हुई गति ने वित्तोय उत्पादों के प्रसार और अकल्पनीय लाभार्जन का रास्ता खोल दिया है।

इसी तरह दूरसंचार के क्षेत्र में हुई प्रगति ने भी मानव संचार को बड़े पैमाने पर सुगम बना दिया है और सूचना तक पहुंच के व्यापक अवसर खोल दिए हैं। अनुमान लगाया गया है कि लगभग बारह करोड़ बीस लाख लोग इंटरनेट का प्रयोग कर रहे हैं (कुंदनानी, 1998/99, पृ. 52)। इस अनुभव और इसकी व्यापकता की

अवधारणा ने यह प्रभाव पैदा किया है कि लोग पहले की तुलना में अधिक सुसंगठित हुए हैं। यह बात थोड़े से लोगों के लिए सही हो सकती है, लेकिन तथ्य यह है कि विश्व के 50 प्रतिशत लोगों ने अभी तक टेलीफोन तक का प्रयोग नहीं किया है (हैरिस, 1998/99, पृ 30)। भूमंडलीय दृष्टि से देखें तो, हमें एक अधिक सुसंगठित विश्व नहीं दिखाई देता बल्कि ऐसा विश्व दिखाई देता है जिसमें विश्व आबादी का एक अल्प प्रतिशत शेष विराट आबादी के जीवनानुभवों से लगातार दूर होता जा रहा है। यही बात विश्व बाजार और उत्पादन के पूंजीवादी संबंधों के मामले में भी लागू हो रही है। जहां दोनों ही पहले की अपेक्षा अधिक व्यापक और अधिक समावेशी हुए हैं और समूचे विश्व में पैठ बना रहे हैं, वहां करोड़ों लोग इस प्रक्रिया से बहिष्कृत कर दिए गए हैं और उन्हें उत्पादक अथवा उपभोक्ता के रूप में पूंजी की मूलभूत जरूरत की परिधि से बाहर 'अतिरिक्त' मान लिया गया है। जैसा कि डेविड हार्वे (1995) का कहना है : पूंजीवाद 'हर व्यक्ति का (और हर वस्तु को भी जिसका विनिमय हो सकता है) अपनी कक्षा में खींच रहा है. साथ ही विश्व आबादी के एक बहुत बड़े हिस्से को स्थायी तौर पर फालतू बना रहा है .' (पृ. 11)। पूंजी की भूमंडलीय पैठ लंबे समय से हो रही है। जान हालवे (1995) का जोर इस बात पर है कि 'पूंजी गतिशील है' विशषकर वित्तीय पूंजी लेकिन अब इलेक्ट्रानिक सुपर हाइवे की मदद से पहले की तुलना में यह अधिक तीव्रता से गतिशील हुई है और इसने समय संकुचन के द्वारा स्थान की भौगोलिकता को भी संकुचित कर दिया है (हार्वे 1989)। या जैसा कि मार्क्स ने सालों पूर्व कहा था कि पूंजीवाद 'स्थान के साथ काल को भी मिटा देने के लिए प्रयासरत रहता है' (1858, पृ 539)।

जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई है। खाद्य उत्पादन में वृद्धि, बीमारियों को रोकने, नियंत्रित करने, और उपचार करने, ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की उपलब्धि जिससे भविष्य की यांत्रिकी संचालित हो सकती है, आदि ऐसे क्षेत्र हैं जिनमे आश्चर्यजनक प्रगति दिखती है। हालांकि इस प्रगति को वर्तमान में जिस तरह से उपयोग में लाया जा रहा है वह व्याकुल करने वाला भी है और खतरनाक भी (किंग, 1997)। प्रगति के इन रूपों को प्राथमिक तौर पर सूचना माल की तरह लिया जा रहा है जिनमें उन फर्मो के लिए जो इन्हें प्रयोग करने और इनका विक्रय करने में प्रबंधन की पहल कर रही हैं, अकूत लाभ पैदा करने की क्षमता है। परिणामतः खेती के अनिवार्य आधारभूत सामान्य बीजों से लेकर मानव जीवन तक के विविध जीवन रूपों के पेटेंट सुरक्षित कराने के लिए एक बेहद भ्रष्ट गलाकाट प्रतिद्वद्वात्मक संघर्ष शुरू हो गया है। 1988 में प्रकाशित क्लोपनबर्ग की किताब

फर्स्ट सीड में दिए गए महत्वपूर्ण निष्कर्षो के आधार पर डैन शिलर (1997) कहते हैं कि औषधि और कृषि-क्षेत्र की बडी बहुराष्ट्रीय कंपनियां जो चाहती हैं और जिसकी माग कर रही हैं वह है 'भूमध्यरेखीय जीन संपन्न क्षेत्रों में अवस्थित प्लांट जर्म-प्लाज्म तक खुली पहुच, और साथ ही उनका जोर इस पर है कि बौद्धिक संपदा संबंधी अंतर्राष्ट्रीय कानूनों को और अधिक कड़ा और सुसंगत बनाया जाए ताकि वे अपने उस मुनाफे को अधिक सुरक्षित बना सकें जो वे अपने संकर बीजों और औषधियों को वापस उन्हीं क्षेत्रों में बेचकर कमाते हैं' (पृ. 115)। दूसरे शब्दों में, पेटेंट कराके यानी संबंधित ज्ञान पर एकाधिकार स्थापित करने वे अपने मुनाफे को सुरक्षित करना चाहते हैं। शिवानंदन (1998/99) के अनुसार, अधिकांशतः बडी कंपनियां जो चाहती थीं वह उन्होंने पा लिया है। वह कहते हैं कि गैट के 1994 के उरुग्वे चक्र का यह एक पमुख परिणाम था। कंपनियों को इस बात की अनुमति प्राप्त हो गई कि वे फसलों और 'तीसरी दुनिया' के देशों मे पाए जाने वाले जंगलीय औषधीय वनस्पतियों मे प्राप्त जैव पदार्थो पर आधारित उत्पादो और प्रक्रियाओं दोनों पर पेटेट अधिकार प्राप्त कर लें और उत्पादों को वापस मूल देशों में बेच सकें, जबकि ये देश पेटेंट कानून के अनुसार अपने यहा इन्हीं के समतुल्य उत्पाद तैयार नहीं कर सकते। किंग (1997) का तर्क है कि जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र मे हो रही खोजें भावी परिणामों के कारण मानवता और पारिस्थितिकी दोनों ही के दृष्टिकोण से इतनी अधिक महत्वपूर्ण है कि इनके नियंत्रण और संबंधित जवाबदेही को बाजारू ताकतों के पक्ष में छोड़ा नहीं जा सकता। लेकिन इन विषयों के नैतिक और व्यावहारिक परिणामों को लेकर सार्वजनिक बहस और संवाद लगभग नगण्य है और है भी तो बहुत अधिक विलंब के साथ है।

1989 में जब बर्लिन की दीवार गिरी थी तब पूजीवाद और उदार लोकतंत्र की विजय की घोषणा जोर-शोर से की गई थी। शीत युद्ध समाप्त हो चुका था और हमसे एक स्थायी शांति का वादा किया जा रहा था (शांति के लाभ की बात नहीं, जिसका उल्लेख मैं बाद में करूंगी।) आज विडंबनात्मक रूप से, शायद, यह तथ्य सर्वाधिक चिंता का कारण बन गया है कि स्थापित लोकतंत्रों में पहले की तुलना में बहुत कम लोग मतदान को लेकर गभीर हैं—जो राजनेता बहुमत प्राप्त करते हैं वे अल्पसंख्य नागरिकों के मत के आधार पर चुने जाते हैं। आज व्यापक रूप से इस तथ्य को स्वीकारा जा रहा है कि हमारे जीवन के बहुत से पक्ष गैर-निर्वाचित और अनुत्तरदायी संस्थाओं द्वारा नियंत्रित, या अत्यधिक प्रभावित, किए जा रहे हैं। ये अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक, गैट आदि जैसे वे संस्थाएं और समझौते हैं जिनका स्वतंत्र प्रभाव राष्ट्रों की सीमाओं से परे है या वे संस्थाएं हैं जिनकी राष्ट्र-राज्यों के

भीतर अपनी स्वयंभू सत्ता कायम है। कोई संदेह नहीं कि अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक, गैट जैसी संस्थाएं राष्ट्र राज्यों की निर्मिति हैं (अधिकांश मामलों में वे राष्ट्र राज्य जिनमें लोकतांत्रिक तरीके से चुनी गई सरकारें हैं), लेकिन इन पर नागरियों का लोकतांत्रिक नियत्रण इस हद तक क्षीण हो गया है कि यह तकरीबन रह ही नहीं गया है। हैबरमास (1999) चेतावनी देता है कि जैसे जैसे मसले अंतर्राज्यीय समझौतों के माध्यम से निपटाए जाएंगे

> वैसे वैसे लोकतांत्रिक वैधता क्षीण होती जाएगी, और इस तरह लिए गए निर्णय जितने अधिक महत्वपूर्ण होंगे, उतने ही अधिक राजनीतिक निर्णय लोकतांत्रिक अभिमत निर्माण और संकल्प निर्माण के क्षेत्र से बाहर होते जाएंगे, जो कि पूरी तरह राष्ट्रीय कार्यक्षेत्र हैं (पृ. 49)।

बेरोजगारी और रोजगार की बदलती प्रकृति, ये दो वर्तमान पूजीवाद की सर्वाधिक परेशान करने वाली समस्याए हैं। नई प्रौद्योगिकी राष्ट्रीय श्रमशक्ति को बहुत तेजी से कम कर रही है। नए रोजगार बन रहे हैं परतु इतनी बडी सख्या में नहीं कि उनकी प्रतिपूर्ति कर सकें जो नष्ट हो रहे हैं। और बहुत से रोजगारो को हस्त श्रम या बुद्धि श्रम, या दोनो ही तरह के अनुभव की आवश्यकता से रहित कर दिया गया है। सामान्य प्रवृत्ति जो दिखाई देती है वह या तो अत्यधिक उच्च तकनीक वाले रोजगारो की है जिनमे पर्याप्त कौशल या ज्ञान या फिर दोनों की ही जरूरत होती है, या फिर ऐसे रोजगारों की ही है जो अल्प कौशल, अल्प वेतन रोजगार हैं जो प्राय. अशकालिक या फिर अस्थायी प्रकृति के होते हैं, और जिन्हे प्राय: आकस्मिक रोजगार कहा जाता है। सैली लर्नर (1997) ने सवाल उठाया है कि 'क्या 'रोजगारविहीन' विकास, अर्ध रोजगार और 'आकस्मिक' रोजगार निकट भविष्य मे सामान्य परिघटना बन जाएंगे' (पृ 178)। हैरिस (1998/99, पृ 28) बताते हैं कि 1995 तक अमरीका में 60 प्रतिशत नए रोजगार आकस्मिक रोजगार हो गए थे। हालांकि एक चीज जो लोग लगभग हर रोजगार में समान रूप से महसूस कर रहे हैं, वह है असुरक्षा की बढ़ती हुई भावना। यह केवल सस्ता ओर अकुशल श्रम ही नहीं है जिसे भूमंडलीय श्रम बाजार में प्रतियोगिता के लिए विवश कर दिया गया है बल्कि अपेक्षाकृत उचित वेतन प्राप्त और कुशल श्रम की भी कमोबेश यही स्थिति है। सिलीकान वैली में उच्च कुशलता वाले रोजगार जो 60,000 डालर वेतन देते हैं वैसे ही रोजगार दुनिया के दूसरे भागों में 12,000 डालर के वेतन में चल रहे हैं (डेविस और स्टेक, 1997, पृ 135)। अपवादस्वरूप बडी कपनियों के मुख्य कार्यकारी अधिकारियों को छोड़ दे जो अनेक अतिरिक्त सुविधाओ के अलावा आधारभूत वार्षिक आय पर 50

प्रतिशत बोनस पाने के अभ्यस्त हो चुके हैं (हटन, 1998), उन अधिकतर लोगों पर जो किसी तरह रोजगार में बने रहने का सौभाग्य प्राप्त किए हुए हैं, कुल प्रभाव उनकी मजदूरी या वेतन में कमी होने और कार्यावधि को लेकर गहरी असुरक्षा से घिरे रहने का है। जो सबसे निचले पायदान पर खड़े हैं उनके नजरिए मे तो कुछ प्रभाव और भी अधिक बुरा है। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन के देशों में दस करोड़ लोग रोजगारी गरीब हैं (प्राय: कार्यशील गरीब के नाम मे अभिहित) और तीन करोड़ सत्तर लाख बेरोजगार हैं (मैकग्रेगर, 1999, पृ. 94)।

वर्तमान विश्व की भर्त्सनीय स्थितियों में मे एक अभाव का निरंतर बने रहना है—भूख, बेघरी, और अनेक तरह की अपूरणीय जरूरतें—जबकि प्रौद्योगिक प्रगति का अर्थ है कि अब हमारे पास वह उत्पादक क्षमता है जिससे पर प्रकार के अभाव को दूर किया जा सके, और ऐसी विधियों से किया जा सके जो पर्यावरण के लिए विनाशकारी नहीं। इलेक्ट्रानिकी (विशेषकर डिजिटीकरण) और जैव प्रौद्योगिकी में हुई क्रांतियों ने उत्पादकता में भारी वृद्धि के रास्ते खोले हैं, वह भी कच्चे माल के लिए प्राकृतिक संसाधनों और ऊर्जा स्रोतों के संभरणीय स्तर को बनाए रखते हुए उनके कम से कम इस्तेमाल द्वारा (किंग, 1997; शिलर, 1997)। मगर जब सामान ओर सेवाएं केवल तभी उपलब्ध हो सकें जब उनकी कीमत चुकाई जाए तो अभाव बना ही रहेगा, भले ही यह अभाव कितना भी असंगत क्यों न लगे। कई उदाहरण प्रस्तुत करने के बाद—जैसे कि दवा कंपनियों द्वारा मनुष्य के रोग निरोध के लिए जीवन में सिर्फ एक बार टीके की जरूरत होती है जबकि वध किए जाने वाले गाय, सूअर, भेड़ जैसे पशुओं को हर वर्ष टीके की दरकार होती है और इसमे ये पालतू पशु कहीं ज्यादा लाभकारी बाजार उपलब्ध कराते हैं—किंग स्थिति के बेहूदापन पर अपनी टिप्पणी का समापन करते हैं :

> इस प्रकार के निर्णय कि 20,000 लोगों की जान बचा सकने वाले उत्पाद को बनाया जाना चाहिए या नहीं, निवेशकों पर छोड़ना घोर सामाजिक विवेकहीनता है। जैव प्रौद्योगिकी सार्वजनिक निवेश का उत्पाद थी और इसका लगभग पूरा विकास सामाजिक तौर पर किया गया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, करदाताओं के 50 वर्ष के निवेश के उपरांत ही वे अंकुर फूटे जो अब वृक्ष बन रहे हैं। प्रौद्योगिकी के विकास के लिए जनता पहले ही भुगतान कर चुकी है, और अब इसका निजीकरण एक प्रकार की धोखाधड़ी है (पृ. 153)।

किंग का तर्क अमरीकी प्रौद्योगिकी की प्रगति के अन्य क्षेत्रों पर भी समान रूप से लागू होता है। हालांकि, मैं इस तर्क को यह सुझाव देते हुए आगे ले जाना चाहती हूं

कि अगर प्रौद्योगिक क्षमता मौजूद है तो यह चुनाव करना कि इससे खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाया जाए या बीमारियों का निदान उपचार खोजा जाए, सामाजिक दृष्टि मे गहरी विवेकहीनता है। इसके अलावा, यह सामाजिक गैरजिम्मेदारी है और मानव अधिकार का गंभीर—यह कहिए आपराधिक—अतिक्रमण है।

लगभग दो दशक पूर्व सुमान जार्न ने 'हरित क्रांति' जिससे कृषि उत्पादकता में असीम वृद्धि की बात कही गई थी, के बारे में किंथ जैसी ही बातें कही थीं। उनकी महत्वपूर्ण पुस्तक *हाउ दि अदर हाफ डाइज* (पहली बार 1976 में प्रकाशित) में उन्होंने उन स्थितियों के बारे में कई चौंकाने वाले तथ्य सामने रखे थे, जो भूख को जन्म देती हैं, फिर उसे बनाए रखती हैं। उन्होंने इसे एक 'योजनाबद्ध अभाव' का नाम दिया था, योजनाबद्ध तरीके से खाद्य की कीमतों और मुनाफे को बनाए रखना और इस तरह खाद्य के उत्पादन को बाजार संबंधों के अंतर्गत बनाए रखना (जार्ज 1986)। अमरीका में कृषि उत्पादन तभी लाभ की स्थिति में आ सका जब यह खाद्य उत्पादन के अर्थ में बड़े पैमाने पर शुरू हुआ। और फिर इसमें बड़ी कंपनियों के छाते तले उत्पादन, संसाधन, पैकेजिंग और वितरण जैसी व्यवस्थाएं जुड़ने से यह और अधिक मुनाफेदार हो गया। बहुत से आर्थिक और राजनीतिक कारणों से अमरीकी सरकार एक लंबे समय से इसे महत्वपूर्ण मानती आ रही है कि कृषि उत्पादन को रियायती रखा जाए, जैसे कि कई अन्य सरकारों ने, विशेषकर विकसित दुनिया में, कर रखा है। अमरीका अपने बेशी उत्पादन (जो रियायतीकरण का प्रत्यक्ष परिणाम है) का उपयोग अन्य बहुत से देशों में न केवल अमरीकी वाणिज्य के बल्कि अपनी शक्ति और प्रभाव के रास्ते खोलने के लिए करने में सफल हुआ है (जार्ज, 1986)।

पूरी कहानी उस अमरीकी शैली के नवसाम्राज्यवाद की विशद गाथा है जिसे विकसित दुनिया के बहुत से अन्य देशों ने बहुत तेजी के साथ अपनाया, खास तौर से द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जैसे ही उन्होंने अपनी उत्पादन क्षमता को पुन: प्राप्त किया वैसे ही। पिलगर (1998) अमरीका से संबंधित उन घटनाओं का उल्लेख करते हैं जिनमें तथाकथित 'शांति के लिए खाद्य' के नाम पर बेशी उत्पादन को अन्य देशों में खपाया जाना होता है जिसके कारण स्थानीय कीमतें इस हद तक कम हो जाती हैं कि छोटे किसान तबाह हो जाते हैं या फिर अपनी भूमि विदेशी बड़ी कृषि कंपनियों को बेचने पर मजबूर हो जाते हैं। शिवानंदन (1998/99) के अनुसार, 1994 के गैट समझौते ने जो भी प्रतिबंध लगाए हों मगर तीसरी दुनिया के निर्धन देशों को खाद्य पदार्थों पर आयात शुल्क लगाने से रोक दिया, और इस तरह इन देशों को अमरीका और यूरोप के सस्ते खाद्यान्न निर्यात के लिए खोल दिया। परिणाम

'चावल, अनाज और अन्य उपजों के घरेलू उत्पादन की मौत (स्थानीय किसान के साथ) के रूप में सामने आया' (पृ. 12)। यह सारा कुछ निश्चित रूप से लोगों और देशों के ध्रुवीकरण को प्रभावित करता है, उसे बढ़ावा देता है, और जिसका कि मैंने पहले उल्लेख किया है, यह दुनिया के करोड़ों बच्चों की जिंदगियों को विनाश के मुंह में धकेल देता है।

रिचर्ड विल्किन्सन (1998) का सीधा समझ में आने वाला तर्क है कि असमानताग्रस्त समाज शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं अधिक पैदा करते हैं, और इनके कारण अधिक हिंसा भी पैदा करते हैं। असमानता के बढ़ते हुए स्तर और साथ ही व्यक्तियों, संस्थाओं और यहां तक कि देशों की भी, अधिक सुरक्षित होती स्थितियां सीधे-सीधे वित्त और व्यापार के उदारीकरण या विनियमन (नियम संयुक्ति) से जुड़े हैं। विनियमन 1970 के दशक के प्रारंभ में शुरू हुआ था और तब से निर्बाध जारी है। 1980 के दशक में रोनाल्ड रीगन और मार्गरेट थैचर द्वारा निर्धारित नवउदारवादी एजेंडे के तहत इसमें विशेष तेजी आई। और अब यहां अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और अन्य राष्ट्रपारीय प्रभाव वाले उन संगठनों के रूप में जो अंतर्राष्ट्रीय पूंजीपति समुदाय के हित में काम करते हैं, अच्छी तरह जड़ जमा चुका है (बरबाख एवं रोबिन्सन, 1999)। बहुत से टिप्पणीकारों के अनुसार विनियमन 1970 के दशक में इसलिए अनिवार्य हो गया था ताकि पूंजी की गतिशीलता को सुगम बनाया जा सके और ऐसा करके उत्पादकता और लाभदायकता को बढ़ाया जा सके। ये दोनों 1960 के दशक के मध्य से लेकर अंत तक बहुत से कारकों की वजह से रुद्ध होने शुरू हो गए थे। अधिकतम लाभदायी निवेशों की अपेक्षा करने वाला वित्तीय पूंजी का प्रवाह नवस्थापित दूरसंचार संरचना के कारण संभव हुआ। इस पूंजी प्रवाह ने कालांतर में इस संरचना को और अधिक समंजित और सुदृढ़ बनाने में बड़ा योगदान किया। इस परस्पर निर्भर रिश्ते ने वित्तीय पूंजी के प्रसार को बढ़ाया और व्यापार के फलक का विस्तार करने के साथ ही वित्तीय सौदों की गति को भी बढ़ाया। इन सौदों में खपने वाले स्थान और काल की दूरियां लगभग 'शून्य' हो गईं। कुंदनानी (1998/99) उन बहुत से लेखकों में से हैं जो यह चौंकाने वाला आंकड़ा उद्धृत करते हैं कि 'भूमंडलीय कंप्यूटर नेटवर्क' द्वारा प्रतिदिन 1.4 खरब डालर का व्यापार होता है' (पृ. 52)। टिकेल (1999) कहते हैं कि 1970 के दशक से, व्युत्पत्तियां (वादाकारी सौदे, विकल्प, इत्यादि)—वित्तीय उत्पादों की एक सामान्य श्रेणी—'आज व्यावसायिक जीवन की सर्वव्यापी परिघटना बन गई है...... (1985 और 1995 के मध्य) व्युत्पन्न संविदाओं का अंकित मूल्य 2,800 प्रतिशत बढ़ गया' (पृ. 251)।

विनियमन ने असमानता और अनिश्चितता को ऐसे कई तरीकों से बढ़ाया है जो हमेशा प्रत्यक्षतः दिखाई नहीं देते। इसने विभिन्न ऐसे आंकड़ों की व्याख्या को, जिनसे विश्व अर्थव्यवस्था, या राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, या विभिन्न कंपनियों की आर्थिक स्थिति के बारे में निश्चित संकेत मिल पाते अत्यधिक कठिन बना दिया है। उदाहरण के लिए, कारपोरेट लाभ के आंकड़े या राष्ट्रों के सकल राष्ट्रीय उत्पाद। सकल घरेलू उत्पाद से संबंधित आंकड़ों से इनके वास्तविक स्वास्थ्य के बारे में जानना आसान नहीं होता। 1970 के दशक में शुरू और तब से लगातार जारी 'परिसंपत्ति हरण' कारपोरेट लाभदायकता को बनाए रखने का एक आसान तरीका बन गया है और ऐसी रणनीति भी बन गया है जिसके द्वारा टिनी रोलैंड और जेम्स गोल्डस्मिथ जैसे कारपोरेट छापामारों ने अकूत संपत्ति बना ली थी। राजनेताओं ने, मुख्य रूप से मार्गरेट थैचर ने, जिन्होंने सार्वजनिक संपत्ति को प्रत्यक्षतः ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के 'स्वास्थ्य' को पुनर्स्थापित करने और पटरी पर बनाए रखने के लिए बेचा था, इसी विचार को 1980 के दशक में अधिक बड़े और सामाजिक रूप से गैरजिम्मेदार स्तर पर लागू किया। विनियमन ने 'परिसंपत्ति हरण' के लिए रास्ता बनाया और 'कारपोरेट छापामारों' या बहुराष्ट्रीय कंपनियों और अन्य बड़ी कंपनियों के लिए परिसंपत्ति खरीदने के लिए आवश्यक धन जुटाना बहुत आसान कर दिया। इसने एक ऐसी स्थिति विकसित की है जिसमें आर्थिक गतिविधि का एक बहुत बड़ा हिस्सा जो कंपनी के लाभ और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं की सुदृढ़ता के बतौर दरशाया जाता है, उसका ज्यादातर संबंध माल और गैर वित्तीय सेवाओं के उत्पादन के बजाए वित्तीय उत्पादों के आधिक्य और परिसंपत्तियों के बेचे खरीदे जाने से होता है। जैसा कि फाइन, लपावित्सास और मिलोनाकिस (1999) देखते हैं कि, 1970 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में हुई आर्थिक गिरावट के बाद से वित्तीय व्यवस्था ने यह दरशाया है कि वह अपनी लाभदायकता को औद्योगिक लाभदायकता और संचय के बिना भी बनाए रख सकती है। ये टिप्पणीकार इस बात पर जोर देते हैं कि 'औद्योगिक और वित्तीय संचय के बीच गतिशीलता की यह विसंगति पूंजीवाद के इतिहास में एक नया विकास है' (पृ. 72)। यह सब बहुत से राजनीतिज्ञों और अर्थशास्त्रियों के लिए चिंता का विषय बन गया है और इससे विश्व बाजार की प्रत्यक्षतः अनियंत्रणीय गत्यात्मकता द्वारा पैदा किए गए भ्रम और असहायता की भावना में और अधिक वृद्धि हो गई है। एक दुखद परिणति निश्चित तौर पर व्यापक रोजगार वंचन के रूप में दिखाई दी है जो सीधे सीधे विकसित देशों की विनिर्माण (मैन्यूफैक्चरिंग) इकाइयों के बहुत बड़े हिस्सों की बेचा बिक्री, उनके आकार प्रकार की कटौती, और उनके भौगोलिक पुनर्स्थापन के कारण पैदा हुई है।

विनिमय दरों के नियंत्रण में ढील उदारीकरण/ विनियमन का पहला और शायद सर्वाधिक असर पैदा करने वाला कार्य था। इसने विश्व बाजार में भागीदारी करने वाले लगभग हर देश की वित्तीय सट्टेबाजी के उतार-चढ़ावों के कारण असुरक्षा की आशंकाओं से ग्रस्त कर दिया है। 1994 में, अगर अमरीकी बैंक निवारक पैकेज लेकर सामने न आए होते तो मैक्सिको अपने तीव्र विनिवेश के कारण दिवालिया हो गया होता। अमरीकी बैंकों की मजबूती यह थी कि मैक्सिको के *बिखरने* की सूरत में स्वयं उन्हें भी भारी हानि उठानी पड़ सकती थी (हैरिस, 1998/1999; रिचर्ड्स, 1997)। और 1997 में विनिवेश का ऐसा ही चक्र 'एशियाई चमत्कार' का खात्मा करने वाला एक मुख्य कारक था। यह वह एशियाई चमत्कार था जिसे पूंजीवाद की विश्वव्यापी सफलता के सबूत के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है (हटन, 1998; लो, 1999)। निश्चित ही, अगर विनियमन नहीं होता तो तीव्र निवेश और विनिवेश कहीं अधिक कठिन हो गया होता। हैरिस (1998/99) कई राष्ट्र-राज्यों की नाजुक स्थिति का उस समय सटीक ढग से समाहार करते हैं जब वह 'आर्थिक लोकतंत्र' के विचार को नई व्याख्या देने वाले सिटी बैंक के वाल्टर रिस्टन को उद्धृत करते हैं। आर्थिक लोकतंत्र की यह नई व्याख्या विश्व आबादी के 99.9 प्रतिशत हिस्से को बहिष्कृत करने वाली है :

> यह वह व्यवस्था है जिसके अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय वित्ताधिपति प्रत्येक देश की राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों का सर्वेक्षण कराते हैं। मतगणना की यह विशाल मशीन एक देश की सरकार की राजनयिक, राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के बारे में विश्व बैंक की क्या धारणा है, इस पर पूरी नजर रखती है और इससे बनी राय बाजार द्वारा निर्धारित उस देश की मुद्रा के मूल्य में तत्काल झलकने लगती है (पृ. 32)।

इस प्रकार का विचार, विनियमीकरण की अवधि में से विकसित होकर, 1992 के रिस्टन जैसे बहुत से लोगों के मामले में दिखाई दे सकता था, लेकिन 1997 तक जार्ज सोरो जो विश्व वित्तीय बाजार के अनुमानों से बहुत संपन्न हो गया था, विश्व 'मुक्त बाजार' के नियमन की आवश्यकता को लेकर चेतावनी देने लगा था (हाब्सबाम, 1998)। और ऐसा करने वाला वह अकेला नहीं था। क्रमशः 1997 और 1998 में अपनी मृत्यु से पूर्व नवउदारवाद—मुक्त बाजार और विनियमीकरण—के मजबूत स्तंभ और सबसे बड़े समर्थक माने जाने वाले जेम्स गोल्डस्मिथ और टिनी रोलैंड जो दोनों क्रमशः 1970 और 1980 के दशकों के दो सर्वाधिक कुख्यात कारपोरेट छापागार थे, सरकारी हस्तक्षेप की बात कहने लगे थे

और यह चेतावनी देने लगे थे कि सरकारों के लिए यह जरूरी है कि वे अपनी अर्थव्यवस्थाओं पर पुनर्नियंत्रण स्थापित करें (*दि मेफेयर सेट*, बीबीसी 2, 8 अगस्त 1999)। पूंजीवादियों के लिए इस तरह की बात कोई आश्चर्यजनक नहीं थी। कम से कम बीसवीं सदी के प्रारंभ से पूंजीवादियों की रणनीति व्यवस्थाओं को इस तरह ढालने की रही है कि वे बाजार के उत्तार चढावों पर अपना अधिकाधिक नियंत्रण स्थापित कर सकें। इस रणनीति के तहत वे प्रायः अपनी राष्ट्रीय सरकारों पर, जब भी जरूरी होता है तब, विधायी उपायों से हस्तक्षेप करने का दबाव बनाते हैं।

और जो अधिक आश्चर्यजनक तत्व है वह यह है कि समाजवादी लोकतांत्रिक नेताओं ने, जो कई पश्चिमी सरकारों में सत्ता में हैं, इस चेतावनी को समझने में कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई है। लैरी इलियट, *गार्जियन* अखबार के वित्तीय संपादक ने 3 सितंबर 1999 को बीबीसी 2 के *बिग आइडिया* कार्यक्रम में कहा था कि इसमें कतई संदेह नहीं है कि निकट भविष्य में अमरीका दुनिया में प्रभावी आर्थिक शक्ति बना रहेगा क्योंकि इसके पास विश्व अर्थव्यवस्था के अग्रणी क्षेत्रों में सर्वाधिक अग्रणी कारपोरेशन हैं। यह वह परिस्थिति थी जिसका श्रेय उन्होंने अमरीकी सरकार के रक्षा में किए जाने वाले निवेश को दिया। दूसरे शब्दों में, रक्षा क्षेत्र में अमरीका के दीर्घकालिक और भारी व्यय ने अमरीकी कंपनियों को अति नवीन प्रौद्योगिकी के उपयोग का स्पष्ट लाभ दिया, और इसलिए, इलियट के अनुसार, मुक्त बाजार में निवेश के बजाए यह अमरीका का अपनी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में निवेश था जिसने उसे विश्व की अग्रणी अर्थव्यवस्था में बदल दिया। हालांकि, अमरीकी आर्थिक गतिविधियों पर भारी रक्षा व्यय का जो गैर नियोजित प्रभाव पड़ा और अब जो सरकारों द्वारा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में नियोजित हस्तक्षेप किए जाने की जो मांग उठाई जा रही है, इन दोनों स्थितियों के बीच एक मूलभूत अतर है। इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि राष्ट्रों की घरेलू अर्थव्यवस्थाओं में योजनाबद्ध हस्तक्षेप से इस समय की परिस्थितियों में जबकि विश्व बाजार का प्रभाव अधिक महत्वपूर्ण हो गया है, पहले जैसे लाभ मिल सकेंगे। क्रिस हर्मन (1996) भी इसी तरह की बात कहते हैं, और तर्क देते हैं कि रक्षा क्षेत्र में निवेश राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओ में विकास की विशेष स्थितियां पैदा कर देता है जो निवेश के दूसरे क्षेत्रों में होने से संभव नहीं होतीं। इस बात की पूरी संभावना है कि विश्व पूंजीवाद की वास्तविक दुनिया में अनिश्चितता को नियंत्रित करने और असुरक्षा को टालने का कोई रास्ता ही नहीं बने। अपने दूसरे और तीसरे अध्यायों में मैंने स्पष्ट किया है कि यह पूंजीवाद का एक अवश्यंभावी सच क्यों है।

वर्तमान दुनिया का कोई चित्रण, भले ही इतना संक्षिप्त क्यों न हो जितना कि यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, संस्कृति के उल्लेख के बिना नहीं हो सकता। सांस्कृतिक संरचनाएं विश्व पूंजीवाद के कुछ अत्यधिक विरोधाभासी पहलुओं को उजागर करती हैं। एक साथ ही हम देख मकते हैं कि जो प्रक्रियाएं एक अधिक सामंजस्यपूर्ण और एकरूप विश्व संस्कृति का निर्माण करती हुई प्रतीत होती हैं, वे उद्रेकपूर्ण राष्ट्रीय पहचानों और जातीय अस्मिताओं और भेदपरकताओं के प्रति बढ़ते आग्रहों को भी जन्म देती है। यद्यपि यह विरोधाभासी प्रतीत होता है, लेकिन जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि बढ़ती हुई अनिश्चितता और असुरक्षा के संदर्भ में यह परिघटना औचित्यपूर्ण सिद्ध होती है। जब लोग ऐसा परिवर्तन होता देखते हैं जो उनकी आर्थिक सुरक्षा और सामान्य जीवन व्यवस्था को खतरा बनता हुआ लगता है तो वे सांस्कृतिक व्यवहार के अपने परिचित और अंतरंग स्वर्गो में शरण्ग तलाशने लगते हैं। बहुत से ऐसे लाग जिन्हें भविष्य में रोजगार की कोई उम्मीद नहीं होती वे उन क्षेत्रों को शरणगाह बना सकते हैं जो उनको पहचान के एकमात्र बचे हुए क्षेत्र होते हैं, जैसे कि परिवार, जातीयना और धर्म। विभेदीकरण की प्रक्रिया किस हद तक संघर्षपूर्ण होगी यह कुछ अंशों तक इस बात पर निर्भर करेगा कि चल रहे एकरूपीकरण की प्रक्रिया किस हद तक तेज होती है।

पिलगर (1998) इस एकरूपीकरण 'अमरीकीकरण' को एक ऐसी प्रक्रिया बताते हैं, जो समंजित अमरीकी संस्कृति के विश्वव्यापी उपभोक्तावाद को बढ़ावा देने के लिए है (पृ. 69)। वह इसे एक उथली संस्कृति बताते हैं जो स्वयं की मर्मृद्धि और हिंसा पर आधारित है और यह प्राय· स्थानीय प्रतियोगिता को दबा देती है। हैरिस (1998/99) एकरूपीकरण की इस प्रक्रिया को—जिसमें वे बहुत से ऐसे तत्वों को शामिल करते हैं जो व्यापार और वाणिज्य के लिए लाभदायक एकरूप मानकों का निर्धारण करें—तुलना पृंजीवाद की राष्ट्र-निर्माण अवस्था से करते हैं जो इस समय विश्व स्तर पर चल रही है। वह संकेत करते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवाद को समान मानकों वाली विश्व व्यवस्था की दरकार होती है, और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के कार्यो में एक मुख्य कार्य उन राष्ट्रीय विविधताओं को—सांस्कृतिक, संगठनात्मक और विधायी विविधताएं—नष्ट करना है जो पूंजी के प्रवाह में बाधा बन सकती हो। इसलिए आज इस पर कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि हमें दुनिया भर में, कभी-कभी अनपेक्षित स्थानों पर भी, मेकडानल्ड के गोल्डन आर्क, हूपर्स, कोका कोला या पेप्सी की पैठ दिखाई देती है। इमे कुछ लोग संस्कृति का डिज्नीकरण कहते हैं। इन्हें सांस्कृतिक क्षुधावर्धक के बतौर देखा जा सकता है जिसका उद्देश्य अमरीकी माल को लगातार खुराक के लिए सांस्कृतिक बाधाओं को

तोड़ना है। इसलिए इस पर भी कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि इस प्रकार के सांस्कृतिक एकरूपीकरण या सांस्कृतिक साम्राज्यवाद को कई प्रकार के प्रतिरोधों का सामना करना पड़ रहा है। यह शायद उन बहुत से कारकों में से एक है जिसने धार्मिक कट्टरता की अभिव्यक्तियों और जातीय और राष्ट्रीयतावादी संघर्षों को बढ़ावा दिया है। ये संघर्ष समकालीन विश्व की बहुत ही वास्तविक और बहुत ही संकटसूचक परिघटना हैं—ऐसी परिघटना जो सरकारों द्वारा रक्षा पर किए जा रहे भारी व्यय को उनके लिए संगत बना देती है।

यह स्थिति मुझे अपने समकालीन यथार्थ के एक अंतिम बिंदु पर पहुंचाती है—एक ऐसा बिंदु जो मानवता के स्वास्थ्य के लिए बहुत ही भितरघाती और डरावने खतरों में से एक है। यह एक ऐसा खतरा है जो नया न होकर लगभग पिछली आधी बीसवीं सदी से दुनिया को घेरे हुए है और जो आम राय के विपरीत अपनी भयावह धृष्टता के साथ जारी है। 1989 में प्रेसीडेंट जार्ज बुश ने यह दावा किया था कि शीतयुद्ध समाप्त हो गया है और वादा किया था कि 'शांति के लाभ' शीघ्र ही मिलेंगे लेकिन हमारे नई सहस्राब्दी में प्रवेश के साथ यह स्पष्ट हो गया है कि 'हथियारों की दौड़ निर्बाध जारी है। 1994 तक ब्रिटेन का शस्त्र उद्योग पुनर्जीवित हो गया था और ब्रिटेन के प्रत्येक दस कर्मचारियों में से एक इस उद्योग में नियुक्त था. और सरकार रक्षा पर इस अरब पौंड स्टर्लिंग व्यय कर रही थी जो यूरोपियन औसत से कहीं बहुत अधिक है (पिलगर, 1998, पृ. 6)। रक्षा व्यय अमरीका में भी कम नहीं हुआ। पिलगर के अनुसार, हालांकि हमें इसके बारे में बहुत ज्यादा सुनाई नहीं देता, रीगन का स्टार वार कार्यक्रम नए पदनाम के साथ लगातार जारी है। यह नया पदनाम टीएचएएडी (थर्मों न्यूक्लियर हाई एल्टीच्यूड एरिया डिफेंस) है और इसके प्रत्युत्तर में रूसी अपना खुद का सिस्टम विकसित कर रहे हैं (पिलगर. 1998, पृ. 8)। इसमें कोई संदेह नहीं है. अधिकतर टिप्पणियों के अनुसार, कि हथियार उत्पादन और हथियार व्यापार अमरीका और इंगलैंड की आर्थिक और राजनीतिक रणनीतियों में केंद्रीय भूमिका निभाते रहेंगे। और शायद और अन्य दूसरे देशों के लिए भी महत्वपूर्ण बने रहेंगे। अमरीका और इंगलैंड दोनों ही उन देशों को हथियार बेच रहे हैं जिनके मानव अधिकार खाते बहुत ही डरावने हैं और दोनों ही हथियारों की बिक्री को राजनीतिक प्रभाव कायम करने के लिए, विशेषकर तेल समृद्ध मध्यपूर्व के देशों में और हाल तक तेजी से विकसित हो रहे पूर्वी एशियाई देशों में, कर रहे हैं (*दि मेफेयर सैट*, बीबीसी 2, 8 अगस्त 1999: हर्मन, 1996)। हर्मन संकेत करते हैं कि 'बगदाद की बमबारी इस व्यवस्था (भूमंडलीय पूंजीवाद) के तर्क का उसी तरह हिस्सा है जैसे कि मल्टीफाइबर

व्यापार समझौता....' (1996, पृ. 30)। दूसरे लोग तभी से बोस्निया के युद्ध के बारे में भी इसी तरह के तर्क दे रहे हैं।

इस संक्षिप्त चित्रण में हमारे समकालीन यथार्थ के सर्वाधिक भितरघाती और चिंताजनक पहलुओं में से केवल कुछ की ओर संकेत किया गया है। यह सब क्यों हो रहा है इसके बारे में विवेचना अगले दो अध्यायों में पूंजीवाद के मेरे विश्लेषण में उजागर होगी। यहां मैं कुछ अन्य लोगों की व्याख्याओं का सारांश प्रस्तुत कर रही हूं।

यह क्यों हो रहा है?— एक नया बालगेम? एक नया स्टेडियम? या दोनों?

भूमंडलीकरण हमारे समय की सर्वाधिक प्रभावी शक्ति के रूप में मौजूद है। प्रत्यक्षत: यह मानवीय प्रगति का एक अपरिहार्य परिणाम है—एक ऐसी प्रक्रिया जिसके साथ व्यक्तियों और राष्ट्रों को अनिवार्यत: सामंजस्य बिठाना है। दीर्घकालिक व्यवस्था में, यह माना जा रहा है कि इससे अधिकांश लोगों के लिए श्रेष्ठतम संभव परिणामों की संभावना बनेगी। भूमंडलीकरण सिद्धांत और उसकी रूढ़िवादिता के इस दृष्टिकोण को हम मीडिया और बहुत से राजनीतिज्ञों से सुनते रहते हैं। डेविड हेल्ड (1998) इसे यथार्थ का अति विश्ववादी दृष्टिकोण कहते हैं (पृ. 24)। हेल्ड के नजरिए को संक्षेप में इस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है : आर्थिक प्रक्रियाएं—वित्तीय और उत्पादन संबंधी दोनों—वैश्वीकृत हो गई हैं। ऐसा इसलिए हुआ है कि बहुराष्ट्रीय और राष्ट्रपारीय कंपनियां भूमंडलीय उत्पादन, विकास और रोजगार को प्रोत्साहन देने, प्रौद्योगिक उपलब्धियों का प्रसार करने और विश्व बाजार में माल और सेवाओं के वितरण को प्रोत्साहित करने का अपरिहार्य माध्यम बन गई है। हालांकि बहुराष्ट्रीय और राष्ट्रपारीय कंपनियों का एक विशेष राष्ट्रीय आधार होता है लेकिन विकास और लाभदायकता की उनकी रणनीतियां भूमंडलीय होती हैं। इसीलिए उनका उत्पादन घरेलू बाजार के बजाए विश्व बाजार के लिए होता है। वित्तीय संस्थाएं भी अपने आकार और प्रवृत्ति दोनों में ही लगातार भूमंडलीय हो रही हैं। अधुनातन प्रौद्योगिकी और विनियमीकरण ने पूंजी प्रवाह की गति को बढ़ाया है जिसके परिणामस्वरूप वित्तीय जिंसों की संख्या बहुत अधिक बढ़ी है। इसने लाभदायकता और संपत्ति के नए क्षेत्र खोले हैं और पहले की तुलना में विश्व व्यापार की मात्रा को बहुत अधिक बढ़ाया है। इससे राष्ट्र-राज्य अधिक मजबूती से संगठित हुए हैं फलत: राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएं और समाज एक दूसरे के प्रति अधिक संवेदनशील बने हैं। एक ओर जहां इसका मतलब है कि राष्ट्रीय सरकारों के लिए अपनी स्वतंत्र आर्थिक नीतियां लागू करना अब उपयोगी कार्य नहीं रहा, साथ ही इसने राष्ट्रों के

बीच युद्ध की संभावनाओं के विरुद्ध तर्क भी उपस्थित किया है। हालांकि राष्ट्र राज्यों की शक्ति क्षीण हुई है, फिर भी निभाने के लिए आज भी उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। भूमंडलीय प्रतियोगिता और कौशल के पैमाने अनिवार्य तत्त्व हो सकते हैं लेकिन सरकारें अपने राष्ट्रों को अधिक प्रतियोगिताक्षम बनाने के लिए काफी कुछ कर सकती हैं। वे तभी अधिक प्रतियोगिताक्षम होंगी जब वे उदार लोकतंत्र और नागरिक दायित्वों को प्रोत्साहित करने के साथ साथ कुछ ऐसी वांछित 'व्यापक आर्थिक नीतियों को लागू करें जो मंथर स्फीति, संतुलित बजट, व्यापारिक बाधाओं और विनिमय नियंत्रणों का निराकरण, पूंजी के लिए अधिकाधिक छूट, श्रम बाजारों का न्यूनतम नियमन, निजीकरण, और नागरिकों को काम में जोत देने वाले सुव्यवस्थित अनुकूलनशील कल्याणकारी राज्य के निर्माण पर केंद्रित करें' (हेल्ड, 1998, पृ 25)। अपने नागरिकों के प्रति राज्यों की जो मुख्य जिम्मेदारी है वह यह सुनिश्चित करने की है कि वे भूमंडलीय प्रतियोगिता की चुनौती का सामना करने में समक्ष हों। और इसका मतलब यह सुनिश्चित करना है कि उनके पास लचीली और अनुकूलनशील क्षमताएं और दृष्टिकोण हों जो उनकी रोजगारपरकता में वृद्धि करें।

जैसा कि हेल्ड ने संकेत किया है अति विश्ववादी दृष्टिकोण पूरी तरह नवउदारवाद है—पूंजीवादी प्रगति और विकास को बढ़ावा देने वाला वह आर्थिक सिद्धात है जो मुख्य रूप से 1970 के दशक मे वर्चस्वकारी हो गया है। यह वह दृष्टिकोण है जो भूमंडलीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख अभिनेताओं ने अपना रखा है। और ये प्रमुख अभिनेता वे शक्तिशाली राष्ट्र-राज्य, संस्थाएं और संगठन हैं जो अपने निजी हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं और अपने इरादों को उन सभी राष्ट्रों पर लाद देते हैं जो विश्व बाजार में भागीदारी करने के इच्छुक हैं—ये हैं अमरीका, समूह आठ (जी 8), आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओईसीडी), अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक, त्रिपक्षीय आयोग आदि (हेल्ड, 1998, पृ. 25)। 'अति-विश्ववाद', हेल्ड और दूसरे अन्य आलोचक बताते हैं कि यह किसी अपरिहार्य और प्राकृतिक शक्ति की अपेक्षा एक राजनीतिक परियोजना है और इसके वर्तमान रूप में अगर इसे बनाए रखना है तो इसका समर्थन भी करना है और इसे प्रोत्साहित भी करना है। हालांकि इस आलोचना का यह मतलब नहीं निकाला जाना चाहिए कि यह समकालीन विश्व का झूठा आकलन है।

इसे एक विचारधारात्मक व्यवस्था और एक विचारधारात्मक परियोजना के रूप में समझा जा सकता है। एक ऐसी परियोजना जो कहानी के एक छोटे से हिस्से का बयान करती है और यथार्थ को पूरी सचाई को विकृत कर देती है। इसके बावजूद

यह ऐसे पर्याप्त सच पर आधारित है जो लोगों को यह समझा सकता है कि यही वह तरीका है जिसके अनुसार स्थितियां बन रही हैं और इन्हें ऐसा ही बनना भी चाहिए। और जब एक विचारधारा इतनी प्रभावशाली हो जाती है—ग्राम्शी के अर्थ में, लोगों को समझा सकने और उनकी राय को अपने पक्ष में करने में सक्षम—जैसी कि यह है, तो यह हमारे जीवन को ढाल सकने में सक्षम एक भौतिक शक्ति भी बन जाती है। भले ही इसका उत्स आर्थिक प्रक्रियाओं में हो यह अपने आप में अर्धस्वायत्त शक्ति अर्जित कर लेती है जो जारी विकास और संबंधित प्रक्रियाओं को प्रभावित करती है और अपने अनुसार उन्हें निरूपति भी करती है। इस तरह भूमडलीकरण बहस और परिसंवाद का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र हो गया है। मैं उन विभिन्न प्रकार की व्याख्याओं और प्रतिक्रियाओं का आकलन करने की कोशिश करूंगी जो भूमंडलीकरण के संबंध में वाम पंथ ने दी हैं। लेकिन मैं यह कोशिश यह स्पप्ट करने के साथ शुरू करना चाहूंगी कि वाम पंथ अपनी प्रतिक्रियाओं में एकसूत्र क्यों नहीं हो पाया। कृपया ध्यान दें कि जब मैं आगे इस विमर्श में 'समूहों' का उल्लेख करूं तो मैं विशेप रूप से उन लोगों की बात कर रही होऊंगी जो समान विचार और विश्लेषणों में भागीदारी करते हैं बजाए उनके जो ऐसे लोगों का समूह हो जो अनिवार्यत: समान पहचान रखते हैं।

मार्क्स से भी पहले समाजवाद को पूंजीवाद के एकमात्र लोकतांत्रिक विकल्प के रूप में प्रस्तावित किया गया था। यह दीगर बात है कि समाजवाद के प्रवक्ता बहुत से विषयों पर, प्राय: बहुत से महत्वपूर्ण विषयों पर भी, हमेशा विभाजित रहे हैं। इसमें से एक सर्वाधिक आधारभूत, और वह जो बहुत से अन्य विवादों की जड़ में रहा है, वह है—समाजवाद को प्राथमिक रूप से उत्पादन के परिणामों को बांटने की एक वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत करना जिसे उत्पादन-साधनों के निजी स्वामित्व को उन्मूलित करके प्राप्त किया जा सकता है। दूसरे लोगों न समाजवाद को पूर्ण सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में समझने का प्रयास किया है—जिसका एक परिणाम समाज द्वारा उत्पादित संपदा का न्यायपूर्ण वितरण है। यहां संपदा को मौद्रिक अर्थ में परिकल्पित नहीं किया गया है बल्कि समाज द्वाग उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के अर्थ में किया गया है। और ये वस्तुएं और सेवाएं क्या हों, और इनका उत्पादन कैसे हो, इसका निर्णय समाज के सदस्यों द्वारा लोकतांत्रिक तरीके से लिया जाना होता है। इस तरह के समाज के अंदर उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व अकल्पनीय होता है। समाजवाद का यह वह विचार था जिसे मार्क्स और एंगेल्स ने प्रचारित किया था। उन्होंने वास्तव में इसका समाजवाद की अपेक्षा साम्यवाद के प्रथम चरण के रूप में उल्लेख किया था और वे

मानते थे कि इससे अनेक सामाजिक रिश्तों में अनिवार्यत: बदलाव आएगा और परिणामत: लोगों में भी ऐसा बदलाव आएगा जिससे वे पूंजीवादी सामाजिक रिश्तों की तुलना में एक दूसरे के प्रति अधिक मानवीय ढंग से व्यवहार करेंगे (मार्क्स और एंगेल्स, 1846, 1848)। समाजवाद की ये दो भिन्न व्याख्याएं राज्य और इसकी भूमिका की दो एकदम भिन्न अवधारणाओं की ओर ले जाती हैं।

'वितरणकामी समाजवादी' या सामाजिक लोकतंत्रवादी यह मानते हैं कि राज्य एक अर्ध स्वायत्त लोकतांत्रिक संस्था है जिसे वामपंथी राजनीतिज्ञों द्वारा, सत्ता में रहने पर, ऐसा विधान बनाने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है जिससे संपदा का अधिक न्यायसंगत वितरण किया जा सके और समाज को अधिक न्यायपूर्ण और समतापरक बनाया जा सके। 'परिवर्तनवादी या क्रांतिकारी समाजवादी' राज्य को एक निरपेक्ष संस्था नहीं मानते। आधुनिक राष्ट्र राज्यों को वे सामाजिक संगठनों के एक प्रकार के रूप में देखते हैं, जिसका विकास पंजीवाद के साथ साथ हुआ है और जो इसके विकास के लिए आवश्यक और बड़ी हद तक लाभदायक है (वुड, 1995, 1999)। ऐसी स्थिति में भी जबकि पूंजीवादी राष्ट्रों की सरकारों पर सामाजिक लोकतांत्रिक पार्टियां काबिज होती हैं, तब भी 'खेल के पूंजीवादी नियम' ही लागू होते हैं, कुछ इस तरह कि जब वितरणात्मक प्रकृति की रियायतें दी जाती हैं तो वे उन्हीं सीमाओं के भीतर होती हैं जो सीमाएं पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के 'स्वास्थ्य' से तय होती हैं। दूसरे शब्दों में, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था—पूंजीवाद का तर्क जिसका अनुपालन करना ही होता है—लोकतांत्रिक संवाद का 'सांचा' तय करती है और समाजवादियों द्वारा प्रेरित नीति के मानकों को सीमित कर देती है (हाल 1982)। इन विशिष्टताओं और विशेषताओं को ध्यान में रखने पर यह समझना बहुत आसान हो जाता है कि भूमंडलीकरण को लेकर वामपंथ की प्रतिक्रिया इतनी भिन्नतापूर्ण क्यों होती है और क्यों यह प्राय: भ्रमोत्पादक और विरोधाभासी दिखाई देती है।

सामाजिक लोकतंत्रवादियों या 'वितरणकामी' वामपंथियों की ओर से भूमंडलीकरण को लेकर मूल रूप से दो तरह की प्रतिक्रियाएं आती हैं, और ये दोनों ही सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता पर बल देती हैं। उनका तर्क होता है कि नियंत्रणहीन बाजारू ताकतों या वैकल्पिक रूप से नवउदारतावाद के 'अति विश्वासी' एजेंडे के आगे सरकारी समर्पण अथवा अतिवादी प्रतिक्रियाओं के प्रभावों को रोकने अथवा सुधारने के लिए हस्तक्षेप की जरूरत होती है। दोनों ही खेमे बिल क्लिंटन के लोकतांत्रिक प्रशासन और टोनी ब्लेयर की 'नई लेबर पार्टी' जैसी तथाकथित सामाजिक लोकतंत्रवादी सरकारों के कटु आलोचक हैं। एक समूह अपने तर्क का

आधार पर्याप्त रूप से उपलब्ध उन अनुभवजन्य साक्ष्यों को बनाता है जो इन दावों का खंडन करते हैं कि विश्व इतिहास में पहले की तुलना में विश्व बाजार अधिक मुक्त और अधिक सुसंगठित हो गया है, विशेषकर इस विचार का कि भूमंडलीय एकीकरण जितना कि यह 1914 तक के कालखंड में हुआ था, उससे कहीं अधिक सुदृढ़ हुआ है (उदाहरण के लिए, देखिए हर्स्ट और थाम्पसन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य जो इन दावों का खंडन करते हैं, 1996)। वे ऐसे महत्वपूर्ण साक्ष्यों का उल्लेख करते हैं जैसे कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों की अपने प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को भूमंडलीय स्तर पर प्रसारित करने के बजाए प्रमुख रूप से विकसित देशों तक सीमित कर देने की प्रवृत्ति। उनका भूमंडलीकरण को लेकर कुल मूल्यांकन यह है कि यह मात्र एक मिथक है। वे तर्क देते हैं कि सरकारें अपनी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं को नियंत्रित एवं दिशाबद्ध करने, और अधिक न्यायपूर्ण समाज के निर्माण की दिशा में ले जाने के लिए पर्याप्त सक्षम हैं, लेकिन राजनीतिज्ञों में ऐसा करने की इच्छा-शक्ति का अभाव है।

दूसरा समूह इस तर्क के कुछ पहलुओं को स्वीकार करता हुआ प्रतीत होता है। वे यह नहीं सोचते कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया मात्र एक मिथक है, लेकिन यह जरूर मानते हैं कि यह इतनी अधिक अग्रगामी और व्यापक नहीं है जितनी होने का दावा अतिविश्ववादी करते रहते हैं। मगर वे सोचते हैं कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया चल रही है और यह भूमंडलीकरण सिद्धांत द्वारा प्रक्षेपित दिशा में चलना जारी रहेगी। इसलिए वे तर्क देते हैं कि राष्ट्र-राज्यों को क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय, दोनों स्तरों पर विनियमीकरण एवं नियंत्रण के राष्ट्रपारीय और अंतर्राष्ट्रीय मापदंड स्थापित करने के प्रयास संगठित रूप से करने चाहिए ताकि भूमंडलीय बाजारू ताकतों के नकारात्मक प्रभाव को रोका जा सके, और साथ ही लोकतंत्र को बचाए, बनाए रखा जा सके और आगे विकसित किया जा सके। बाद वाले समूह में फिर एक विभाजन दिखाई देता है—एक गुट सोचता है कि पूंजीवाद और बाजार की व्यवस्था के विकल्प के रूप में कोई दूसरी आर्थिक व्यवस्था अब सक्रिय नहीं है (उदाहरण के लिए, एंथनी गिडेन्स, 1998), और दूसरा गुट सोचता है कि अंततः हम एक ऐसी लोकतांत्रिक विश्व सरकार विकसित कर लेंगे जो उचित वितरण और न्याय की विश्वव्यापी समाजवादी आर्थिक व्यवस्था को लागू कर सकेगी (उदाहरण के लिए, समीर अमीन, 1997)। वे सब भूमंडलीकरण के प्रति जिनकी प्रतिक्रिया इनमें से पहले या दूसरे किसी भी तर्क के साथ होती है, सोचते हैं कि वामपंथ की उन पार्टियों को जो इस समय कई पश्चिमी देशों में सत्ता में हैं, जो वे उठा रही हैं उससे कहीं अधिक आक्रामक या सुरक्षात्मक कदम उठाने चाहिए (हैबरमास, 1999 के अनुसार)। वे न

केवल और अधिक सामाजिक समरसता और न्याय के लक्ष्य को लेकर कदम उठाने की जरूरत पर बल देते हैं बल्कि पर्यावरण सुरक्षा और संभरणीयता को भी अधिक महत्व देते हैं।

दूसरी ओर, क्रांतिकारी / परिवर्तनवादी समाजवादी—वे जिनका विचार मूल रूप से समाजवाद की मार्क्स और एंगेल्स की अवधारणा से जुड़ा है (देखें, ओलमान, 1999) और इस कारण से जिन्होंने सोवियत संघ और उसके उपग्रहीय राज्यों को कभी भी इस अवधारणा का प्रतिनिधि नहीं माना—इस बात पर सहमत हैं कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से पूंजीवाद लगातार पूर्णरूपेण विश्व व्यवस्था बनता गया है, जिसकी भविष्यवाणी मार्क्स और एंगेल्स ने 1848 के *कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो* में कर दी थी। यहां भी हमें भूमंडलीकरण और अन्य संबंधित मुद्दों पर व्याख्याओं की भिन्नता दिखाई देती है। एक गुट—हालांकि मूल रूप से भूमंडलीकरण के रूढ़िवादी विचार से असहमति जताते हुए—इस बात पर सहमत है कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया घट रही है और राष्ट्र राज्य बहुत अधिक शक्तिविहीन हो गए हैं—और इस तरह बदल गए हैं कि सीमाबद्ध न्यायिक क्षेत्र के रूप में इनकी सरकारें राष्ट्रपारीय एजेंडा लागू कराने वाली संचारण पट्टिया (ट्रांसमिशन बेल्ट) और निस्यंदक उपकरण (फिल्टरिंग डिवाइस) होकर रह गई हैं (रोबिन्सन, 1999 पृ. 19)।

'अति विश्ववादी' दृष्टिकोण या कहिए कि भूमंडलीकरण के किसी भी दृष्टिकोण के विपरीत एक दूसरा समूह पूंजीवाद को अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति पर जोर देता है। इससे उनका आशय होता है पूंजीवादी संबंधों का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गहराव और विश्व बाजार की पैठ और क्षेत्र का विस्तार और साथ ही राष्ट्र राज्य के भूमंडलीय उत्कर्ष की अपेक्षा राष्ट्रों के बीच अत्यधिक संगठित रिश्ते। उनका तर्क होता है कि पूंजीवाद को सदैव ही राष्ट्र राज्य और राज्य के राजनीतिक नेताओं की आवश्यकता होगी जो राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर ही पूंजीवाद के विकास और उन्नयन के हित में काम करेंगे (उदाहरण के लिए, वुड, 1999)। क्रांतिकारी / परिवर्तनवादी समाजवादी भी अन्य मुद्दों पर कुछ इस तरह विभाजित हैं कि उनकी दृष्टियां मार्क्स के आर्थिक लेखन की मूलभूत रूप से विभिन्न व्याख्याओं को दरशाती हैं। पूंजीवाद की गत्यात्मकता के संबंध मे जो उनका मत है वही उनके मतभेद और असहमतियों के केंद्र में दिखाई देता है हालांकि यह पूरी तरह संभव है कि, कम से कम कुछ बिंदुओं में, ये मतभेद वास्तविक होने की अपेक्षा आभासी [illegible] के मसले अधिक हो

एक प्रभावशाली 'समूह' में विलियम रोबिन्सन, ए. शिवानंदन और रोगर बरबाख जैसे लोग शामिल हैं जिनका लेखन प्राय: 'तीसरी दुनिया' के मसलों और नव साम्राज्यवाद पर केंद्रित रहता है। ये लेखक प्रौद्योगिक क्रांति के महत्व पर बल देते हैं जिसने उत्तरी क्षेत्र में या अधिक विकसित देशों में श्रम को विस्थापित कर दिया हे और दक्षिण में या विकसित और नव-विकासशील देशों में श्रम के शोषण को निरंतरता के साथ बढ़ाया है। अपने लेखन में वे सुझाव देते हैं कि प्रौद्योगिकी की प्रगति ने पूंजी के प्रभाव को दुनिया भर में प्रसारित करने की प्रक्रिया को सुलभ बनाया है और उसे गति दी है जिसने उत्तरी अमरीका और यूरोप जैसे अत्यधिक विकसित देशों के भीतर भी 'तीसरी दुनिया' जैसी गरीबी के 'समुद्र' पैदा कर दिए हैं और साथ ही लैटिन अमरीकी, एशियाई और यहां तक कि कुछ निर्धनतम अफ्रीकी देशों में अति समृद्धि के कुछ 'तालाब' या 'बाड़े' पैदा कर दिए हैं (रोबिन्सन, 1996, पृ. 23)। इस समूह के अधिकांश लेखक तर्क देते हैं कि पूंजीवाद में एक युगांतरकारी अंतरण पैदा हुआ है और पूंजीवादी कुलीनों का एक नया भूमंडलीय वर्ग निर्मित हो गया है जो पूरे विश्व में पारंपरिक राष्ट्रीयता पर आधारित राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग की शक्ति से प्रतिद्वंद्विता कर रहा है (बरबास और रोबिन्सन, 1999)। इन लेखकों का कहना है कि 'अति विश्ववादी' दृष्टिकोण या नवउदारवाद वह विचारधारा है जो विशेष रूप से इस नए वर्ग के हितों को साधती है।

क्योंकि इस समूह के बहुत से लेखक उस भूमिका पर बल देते हैं जो दूरसंचार की अति प्रगति—इलेक्ट्रानिक विशेषकर डिजिटल क्रांति—ने भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में निभाई है, इसलिए दूसरे उनके ऊपर 'प्रौद्योगिक संकल्पवाद' का आरोप लगाते हैं (उदाहरण के लिए, शिवानंदन और वुड के बीच हुए संवाद को देखिए, 1997)। वुड, विशेष रूप से *शिवानंदन की इस टिप्पणी का उल्लेख करते हैं कि* 'यदि....वाष्प मिल ने आपको औद्योगिक पूंजीवादी दिया तो माइक्रो चिप ने आपके समाज को भूमंडलीय पूंजीवादी दिया है' (पृ. 20)। दूसरे शब्दों में, पूंजी विकास की गत्यात्मकता वस्तुत: प्रौद्योगिक प्रगति है। जो सकता है कि शिवानंदन और अन्य इसे एक वास्तविक दृष्टिकोण के रूप में न लेते हों, लेकिन प्राद्योगिकी पर अनावश्यक जोर देने से समस्या यह पैदा होती है कि जो लेखक इस दृष्टिकोण को उठाते है वे इस विषय पर कि मार्क्स के 'मूल्य के नियम' का क्या हो रहा है, कोई व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर पाते। मैंने इस 'नियम' की विस्तृत चर्चा दूसरे और तीसरे अध्याय में की है लेकिन यहां उम्मीद है कि, यह कहना ही पर्याप्त होगा कि इसमें आधारभूत रूप से जो चीज शामिल है वह यह विचार है कि पूंजीवाद का ऐतिहासिक रूप से

एक विशिष्ट गुण यह है कि जीवंत मानवीय श्रम सारे मूल्य का स्रोत है और इस तरह लाभ और समय पूंजी संचयन का आधार है। प्रत्यक्षत: मार्क्स के अर्थशास्त्र में यह एक बहुत महत्वपूर्ण 'नियम' है। उन समाजवादियों के लिए, जो यह सोचते हैं कि यह केवल सर्वहारा वर्ग या श्रमिक हैं जो भौतिक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और मूल्य पैदा करते हैं, श्रम के प्रौद्योगिक विस्थापन का मतलब है कि पूंजीवादियों की लाभदायक निवेश की खोज नव-उद्योगीकृत या अर्ध विकसित देशों की ओर मुडनी चाहिए जहां अधुनातन प्रौद्योगिकी की अपेक्षा भौतिक वस्तुओं के उत्पादन के लिए सस्ते श्रम का उपयोग किया जा सके जिससे विश्व बाजार में इस तरह का माल प्रतियोगितात्मक कीमत के साथ लाया जा सके। इस अर्थ में प्रौद्योगिकी ने संपूर्ण भूमंडलीकरण प्रक्रिया को शुरू किया है। अपने अस्तित्व के लिए पूंजीवाद के मूल्य उत्पादन के लिए मानवीय श्रम की आवश्यकता होती है, और क्योंकि विकसित देशों का श्रम, या वैसा श्रम जो मूल्य पैदा करता है, इसे पर्याप्त संख्या में नहीं कर सकता इसलिए पूंजीवाद को विश्व के दूरदराज कोनों तक फैलना आवश्यक हो जाता है। इस दृष्टिकोण से आगे बढ़ते हुए कुछ लोग तर्क देते हैं कि विकसित दुनिया के अधिसंख्य श्रमिक मूल्य के स्रोत के रूप में काम नहीं आ सकते मगर पूंजीवाद को उपभोक्ताओं के रूप में इनकी जरूरत होती है इसलिए सरकारों को अपने नागरिकों को 'सामाजिक मजदूरी' देनी होगी और इस तरह एक अलग प्रकार का समाजवाद—उपभोक्ता समाजवाद—गलती से उभर आएगा (गोर्ज, 1985)।

दूसरे क्रांतिकारी/परिवर्तनवादी समाजवादी अपने आपको आंतरिक प्रवृत्तियों के 'नियमों' पर केंद्रित करते हैं (उदाहरण के लिए, गतिशीलता के नियम, विशेष रूप से 'मूल्य का नियम' जिसका पहले उल्लेख किया गया है)। ये समाजवादी पूंजीवाद को एक सामाजिक आर्थिक मानवीय संगठन के एक विशिष्ट ऐतिहासिक रूप के बतौर परिकल्पित करते हैं। वे जोर देते हैं कि इन आंतरिक प्रवृत्तियों ने हमेशा ही पूंजीवाद की गति और विकास को नियंत्रित किया है। 'सार्वभौमीकरण' या पूंजीवाद के पूर्ण 'अंतर्राष्ट्रीयकरण' [एलन मेक्सिन्स वुड द्वारा दिया गया नाम (1999)] की गत्यात्मकता या उसके दिशामार्ग को *व्याख्यायित* करने के लिए वे आंतरिक प्रवृत्तियों के नियमों का प्रयोग करते हैं। इस समूह के अधिकांश लेखक एक विशेष प्रवृत्ति—*लाभ की गिरती हुई दर*—का उल्लेख करते हैं (उदाहरण के लिए, ब्रेनर, 1998)। यहां भी हमे कुछ और मत भिन्नताएं दिखती हैं जो दूसरे नियमों से संबंधित हैं—यह गत्यात्मकता की प्रवृत्तियां जिन्हें वे इतिहास के इस मोड़ पर लाभ की गिरती हुई दर के साथ जोड़कर या उसको *अंत:प्रक्रिया* के रूप में देखते हैं। कुछ लेखक पूंजी को संचित और संकेंद्रित करने, और बाजारों और

पूंजीवादियों की आपसी प्रतिद्वंद्विता जो फर्मो की और अधिक संचयन और विकास के माध्यम से अधिकाधिक लाभदायकता प्राप्त करने की कोशिशों से पैदा होती है, पर जोर देते हैं। कुछ अन्य लेखक सुझाव देते हैं कि अंतर्राष्ट्रीयकरण या भूमंडलीकरण की मुख्य गत्यात्मकता पूंजी और श्रम के बीच संघर्ष की है। कुछ अन्य लोग तर्क देते हैं कि वित्तीय और औद्योगिक पूंजी के बीच निवेश और वर्चस्व का प्रतियोगितात्मक संघर्ष ही प्रेरक शक्ति है। जो श्रम और पूंजी के बीच वर्ग संघर्ष पर ध्यान केंद्रित करते हैं वे तर्क देते हैं कि पूंजी के विरुद्ध श्रमिक वर्ग की कार्यवाही की प्रभावशीलता ही है जिसने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पूंजीवादी समृद्धि के एक लंबे युग का समापन किया। इससे लाभ की दर में गिरावट की और निर्माणकारी पूंजी के सस्ते और असंगठित श्रम की खोज में गतिशील होने की 'प्रक्रिया' शुरू हुई।

दूसरी ओर वे लेखक जो पूंजीनिवेशों के प्रवाह को नियंत्रित करने के पूरे अधिकार प्राप्त करने के लिए वित्तीय और औद्योगिक पूंजीपतियों में होने वाले वर्चस्व के संघर्ष को अपना विषय बनाए हुए हैं, इस बात पर बल देते हैं कि प्रौद्योगिकी ने कैसे इस संघर्ष में वित्तीय पूंजी की मदद की है। इलेक्ट्रानिक सुपरहाइवे के माध्यम से पूंजी को त्वरित गति से स्थानांतरित करने की क्षमता और आनुमानिक उद्यमों के माध्यम से अधिकाधिक लाभदायकता का वादा कर सकने के कारण वित्तीय पूंजी, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, औद्योगिक आधार से निवेश को अपनी ओर खींचने में सफल हुई है। इसलिए वित्तीय पूंजी, प्रौद्योगिकी की सहायता से और विश्व बाजार की ताकतों को खुली छूट देकर और भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को तेज कर, बाजी मार ले गई है। उनका तर्क है कि औद्योगिक पूंजी के पास राष्ट्रीय सरकारों की नीतियों को प्रभावित करने की शक्ति थी, अब यह वित्तीय पूंजी की विनिवेश की शक्ति है जो सरकारों का हाथ मरोड़ सकती है। नवउदारवादी नीतियों ने जिन्हें अपनाए जाने को सरकारों को विवश कर दिया गया है पूंजीपति वर्ग के इस गुट के हितों को प्राथमिक रूप से साधा है—ध्यान दीजिए कि ऐसा किसी नए वर्ग का निर्माण करके नहीं बल्कि बहुत से राष्ट्र-राज्यों में पहले से ही अस्तित्व में बने हुए पूंजीपति वर्ग के एक गुट की ताकत को बढ़ावा देकर हुआ है।

मेरी राय में वे लेखक जो अपनी बात इस तर्काधार से शुरू करते हैं कि पूंजीवाद अपने ऐतिहासिक रूप से विशिष्ट 'नियमों' और प्रवृत्तियों के अनुसार गतिशील और विकसित होता है, *कहीं अधिक प्रभावशाली व्याख्याएं प्रस्तुत करते हैं हालांकि,* उन्होंने भी, मेरे ज्ञान के अनुसार, समकालीन भूमंडलीय पूंजीवाद का पूरी तरह सम्यक विवेचन नहीं किया है। और परिणामत. अभी तक अति विश्ववादी दृष्टिकोण

के सामने कोई पूरी तरह प्रभावकारी चुनौती उपस्थित नहीं हो सकी है। इसके बावजूद, वे हमें यह अवश्य बताते हैं कि समस्या को सटीक ढंग से कैसे समझा जाए। यह बात विशेष तौर पर फाइन और अन्यत्र (1999) पर ज्यादा खरी उतरती है जिन्होंने ब्रेनर (1998) की आलोचना प्रस्तुत करते हुए हमें यह याद दिलाया है कि समस्या को समझने की हमारी दृष्टि मार्क्स के 'मूल्य के नियम' पर आधारित होनी चाहिए जो हमें 'विभिन्न प्रकार की पूंजियों के बीच हो रहे प्रतियोगितात्मक संघर्ष को पूंजी श्रम संबंध से जोड़ने की समझ प्रदान करता है. साथ ही क्षैतिजिक अंतर पूंजीवादी संबंधों और ऊर्ध्वाधर वर्ग संबंधों और वर्ग संघर्षों के बीच एक कड़ी स्थापित करता है' (पृ. 81)। इतना कहे जाने के बाद, आलोचनात्मक शिक्षा उन सभी व्याख्याओं से कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टियां प्राप्त कर सकती हैं। फिर भी यह मानना आवश्यक है कि इनमें से कोई भी व्याख्या उन सारे चरों (गतिशील पहलुओं) पर या चरों के बीच संबंधों पर विचार नहीं कर पाती जिन पर विचार किया जाना चाहिए। जब इस तरह के विश्लेषण की बात आती है तो मार्क्स का आर्थिक लेखन दो कारणों से सर्वाधिक सम्यक व्याख्या प्रस्तुत करता है: (1)क्योंकि हम पूंजीवाद को समझने की कोशिश कर रहे हैं जो कि कोई स्थिर संरचना या 'वस्तु' न होकर एक गत्यात्मक प्रक्रिया है, इसलिए कोई भी व्याख्या या उत्तर अंतिम या निर्णायक नहीं हो सकते, और हमें यह कोशिश करनी भी नही चाहिए। हमें जिनकी जरूरत है वे विश्लेषण के 'औजार' हैं जिन्हें हम पूंजीवाद को जो प्रगति और अवनति की एक द्वंद्वात्मक प्रक्रिया में से विकसित और गतिशील होता है, को समझने में इस्तेमाल कर सकें। यही वह चीज है जो मार्क्स हमें प्रदान करता है। और (2) मार्क्स का पूंजीवाद का सम्यक विवेचन अकेला ऐसा है जो हमें चरों (गतिशील पहलुओं) की समग्रता को पहचानने की क्षमता प्रदान करता है। अगर हम पूंजीवाद की सही प्रकृति को इस तरह पकड़ना चाहते हैं कि हम पहले इसे चुनौती दे सकें और फिर इसे मानवीय सामाजिक आर्थिक संगठन के पूरी तरह नए रूप में ढाल सकें तो चरों की समग्रता पर विचार करना अनिवार्य है।

संदर्भ

ओलमान, पी. (1999), *रिवोल्यूशनरी सोशल ट्रांसफार्मेशन : डेमोक्रेटिक होप्स, पॉलिटिकल पासिबिलिटीज एंड क्रिटिकल एजुकेशन*, वेस्टपोर्ट, सीटी . बर्जिन एंड गार्वे.

अर्मीन एस (1997). *कैपीटलिज्म इन दि एज ऑफ ग्लोबलाइजेशन दि मैनेजमेन्ट आफ कंटम्पररी सोसाइटी* लंदन . जेड

बर्जर, जे. (1998/99), 'अगेंस्ट दि डिफीट ऑफ दि वर्ल्ड', *रेस एंड क्लास*, 40 (सं. 2/3) (अक्टूबर/मार्च), 1-4.

ब्रेनर, आर. (1998), 'दि इकनामिक्स ऑफ ग्लोबल टरबुलेंस', *न्यू लेफ्ट रिव्यू*, 224 (मई/जून), 1-264.

बरखाब, आर., और रोबिन्सन, डब्ल्यू.आई. (1999), 'दि फिन डे सीसल डिबेट : ग्लोबलाइजेशन ऐज इपोकल शिफ्ट', *साइंस एंड मोसाइटी*, 63 (सं. 1, वसंत), 10 39.

डेविस, जे., और स्टेक, एम. (1997), 'डिजिटल एडवांटेज', जे. डेविस, टी. हिर्शल, और एम. स्टेक (संपादक), *कटिंग ऐज : टेक्नोलाजी, इनफार्मेशन, कैपीटलिज्म एंड सोशल रिवोल्यूशन* (अध्याय 8) में, लंदन : वर्सो.

फाइन, बी., लेवावित्सास, सी., और मिलोनाकिस, डी. (1999), 'एड्रेसिंग दि वर्ल्ड इकानामी : टू स्टेप्स बैक', *कैपीटल एंड क्लास*, 67 (वसंत), 47-90.

फ्रेरे, पी. (1974), 'अथारिटी वर्सेस अथारिटोरियनिज्म', आडियो टेप, सीरीज में : *थिंकिंग विद पाओलो फ्रेरे*, सिडनी, आस्ट्रेलिया : आस्ट्रेलियन कौंसिल ऑफ चर्चेज.

जार्ज, एस. (1986), *हाउ दि अदर हाफ डाइज : दि रीयल रीजंस फार वर्ल्ड हंगर*, हारमोंड्सवर्थ, यू.के. : पेंगुइन.

गिडेन्स, ए. (1998), *दि थर्ड वे : दि रिन्यूअल ऑफ सोशल डेमोक्रेसी*, कैंब्रिज : पालिटी प्रेस.

गोर्ज, ए. (1985), *पाथ्स टू पैराडाइज : आन दि लिबरेशन फ्राम वर्क*, लंदन : प्लूटो प्रेस.

हैबरमास, जे. (1999), 'दि यूरोपियन नेशन-स्टेट एंड दि प्रेशर्स ऑफ ग्लोबलाइजेशन, न्यू लेफ्ट रिव्यू, 235 (मई/जून), 46-59.

हॉल, एम. (1982), 'मैनेजिंग कॉन्फ्लिक्ट, प्रोड्यूसिंग कन्सेंट', यूनिट 21, ब्लॉक 5 में : *कंफार्मिटी, कंसेंसस एंड कॉन्फ्लिक्ट, डी 102, सोशल साइंसेज : ए फाउंडेशन कोर्स*, मिल्टन कींस, यू.के. : ओपन यूनिवर्सिटी प्रेस.

हर्मन, सी. (1996), 'ग्लोबलाइजेशन : क्रिटिक ऑफ ए न्यू आर्थोडक्सी', *इंटरनेशनल सोशलिज्म*, 73 (शरद), 3 33.

हैरिस, जे. (1998/99), 'ग्लोबलाइजेशन एंड दि टेक्नोलाजिकल ट्रांसफार्मेशन ऑफ कैपीटलिज्म', *रेस एड क्लास*, 40, (सं. 2/3), 21 35

हार्वे, डी. (1989), *दि कंडीशन ऑफ पोस्टमॉडर्निटी*, ऑक्सफोर्ड : बासिल ब्लैकवेल

हार्वे, डी. (1995), 'ग्लोबलाइजेशन इन क्वेश्चन', *रिथिंकिंग मार्क्सिज्म*, 8 (सं. 4), 1 17

हेल्ड, डी. (1998), 'दि टिमिड टेंडेंसी', *मार्क्सिज्म टुडे, स्पेशल इश्यू* (नवंबर/दिसम्बर), 24 27.

हिर्शल, टी. (1997), 'स्ट्रक्चरल अनइंप्लायमेंट एंड दि क्वान्टिटेटिव ट्रांसफार्मेशन ऑफ कैपीटलिज्म', जे. डेविस, टी. हिर्शल और एम. स्टेक (संपादक), *कटिंग ऐज : टेक्नोलाजी, इनफार्मेशन, कैपीटलिज्म एंड सोशल रिवोल्यूशन* (अध्याय 10) में, लंदन : वर्सो.

हर्स्ट, पी. और थाम्पसन, जी. (1996), *ग्लोबलाइजेशन इन क्वेश्चन : दि इंटरनेशनल इकानामी एंड पासिबिलिटीज फार गवर्नेंस*, कैंब्रिज : पालिटी.

हाब्सबाम, ई. (1998), 'दि डेथ ऑफ नियो लिबरलिज्म', *मार्क्सिज्म टुडे, स्पेशल इश्यू* (नवंबर/दिसंबर), 4 8.

अध्याय दो

पूंजीवाद के अंतर्य का उद्घाटन :
सामान्य पण्य से भूमंडलीय सामाजिक आधिपत्य तक :
पूंजीवाद, भाग 1

मार्क्स को 'पढ़ना'—विश्व को 'पढ़ना'

जैसी कि मैंने पहले ही चेतावनी दी थी, इस तरह की समीक्षाओं से गुजरने के बाद भी, मार्क्स को 'पढ़ना' आसान कार्य नहीं है। फिर भी, अगर हम मार्क्सवादी मीमांसा के कुछ आधारभूत तत्वों को जिनका उल्लेख मैंने इस और अगले अध्याय में किया है, 'समझ' लें तो मार्क्स को समझने की हमारी यात्रा थोड़ी कम कष्टसाध्य हो जाती है। मैंने इस किताब की भूमिका में स्पष्ट किया था कि मार्क्स की मेरी व्याख्या या 'अध्ययन' उस विशिष्ट परंपरा में आता है जिससे, दुर्भाग्यवश, बहुत कम लोग जुड़े हैं। जो दूसरे लोग इस परंपरा से जुड़े हैं वे अपनी व्याख्याओं के क्षेत्र में मत भिन्नता रखते हैं, परंतु जिस एक बात पर सभी सहमत हैं वह है मार्क्स के लेखन कार्य का द्वंद्वात्मक अध्ययन या समझ। जैसा कि मैं पहले भी उल्लेख कर चुकी हू, इस परंपरा के कुछ लोग, दुर्घटनावश, मार्क्स के दृष्टिकोण की उसकी विशिष्ट प्रकृति को पहचानने या समझने के बजाए, मार्क्स की व्याख्या हीगेलवादी मीमांसा की पदावली में करते हैं।[1] पूंजीवाद का मेरा विवेचन, इस और इसके अगले अध्याय में, मार्क्स द्वारा निरूपित पूंजीवाद की विशिष्ट द्वंद्वात्मक संकल्पना की समझ पर आधारित है। इस पुस्तक की भूमिका में, मैंने ऐसे कई नामों का उल्लेख किया है जिनकी पहचान मैंने इस परंपरा का एक हिस्सा होने के रूप में की है। आगे की विवेचना में मैं उन लेखकों का उल्लेख करूंगी या उन्हें उद्धृत करूंगी जो न केवल मेरी व्याख्या के एक विशेष पक्ष से सहमत हैं, बल्कि उन्होंने अपनी कृतियों में इस पक्ष पर बल भी दिया है।

इस अध्याय में, हम अपनी यात्रा के पूर्व चरण में प्रवेश कर रहे हैं। यहां मैं पूंजीवाद के 'सारतत्व' या 'अंतर्य', या जिसे रोजडोल्स्की (1977) ने 'सामान्यत:

पूंजी' कहा है, की विवेचना करूंगी, और फिर तीसरे अध्याय में मैं स्पष्ट करूंगी कि यह अंतर्य पूंजीवादी समाज व्यवस्था में एक ठोस और जटिल यथार्थ के रूप में कैसे खुलता और प्रकट होता है। हालांकि, जैसा कि मैंने पहले कहा, हमारी यात्रा उस समय पर्याप्त आसान और अधिक लाभदायी हो जाएगी, अगर मैं पहले पूंजीवाद को समझने और विश्लेषित करने के मार्क्स के दृष्टिकोण या लेखन के आधारभूत पहलुओं की व्याख्या कर दूं। सबसे पहले मैं इस दृष्टिकोण की आलोचना या रूपरेखा की विवेचना करूंगी और बताऊंगी कि मेरा प्रस्तुतीकरण इससे किस तरह से संबद्ध है, और साथ ही मैं इस दृष्टिकोण के उन दो आधारभूत पहलुओं की विवेचना भी प्रस्तुत करूंगी जो मार्क्स के लेखन के मुख्य स्वर, या निदेशक सूत्रों की रचना करते है। इसके बाद, और सर्वाधिक प्रमुखता से मैं उस संकल्पनात्मक या अवधारणात्मक स्थिति—या द्वंद्वात्मक संकल्पना—की व्याख्या करूंगी जो उनके (मार्क्स के) दृष्टिकोण को आधार प्रदान करती है, और उन संकल्पनात्मक 'औजारों' की विवेचना भी करूंगी जिनका प्रयोग वह पूंजीवाद के विश्लेषण और उजागरीकरण के लिए करते हैं।

पूंजीवाद की समीक्षा संबंधी उनके विचार लगभग हर उस रचना में मौजूद हैं जो उन्होंने लिखी। इस अध्याय में और अध्याय तीन में मेरी विवेचना मुख्य रूप से *कैपीटल* के तीन खंडों और *ग्रुंडरिस्स* पर केंद्रित रहेगी (हालांकि, मैंने मार्क्स, 1859, 1863अ. 1863ब और 1863स से भी सामग्री ली है)। जैसा कि मैं पहले उल्लेख कर चुकी हूं, *कैपीटल* का पहला खंड ही वह खंड था जिसे प्रकाशन के लिए स्वयं उन्होंने ही तैयार किया था। बाकी के दो खंड उनके मित्र और सहयोगी फ्रेडरिक एंगेल्स द्वारा प्रकाशन के लिए तैयार किए गए थे। मार्क्स के *थ्योरीज ऑफ सरप्लस वैल्यू*, भाग एक, दो और तीन (1863अ, 1863ब, 1863स) को प्राय: *कैपीटल* के चौथे खंड के बतौर उल्लिखित किया जाता है। इन खंडों में पूंजीवाद की प्रकृति में पैठने की उनकी अंतर्दृष्टि बुर्जुआई और समाजवादी राजनीतिक अर्थतंत्र, दोनों की ही उनकी समीक्षा से गुंथी हुई है। कार्ल काउत्स्की ने इनका प्रकाशन, एंगेल्स के निधन के बाद, 1905 में किया था। इन सारी कृतियों में *कैपीटल* का पहला खंड सर्वाधिक चर्चित और सर्वाधिक पढ़ी जाने वाली कृति रही है। फिर भी, यह चिह्नित करना आवश्यक है कि पहला खंड दूसरे और तीसरे खंडों में किस तरह संबद्ध है। दुर्भाग्यवश इस मसले पर भी मार्क्सवादियों के बीच जो समवैचारिकता से परे समूह के रूप में जाने जाते हैं, पर्याप्त मतभेद हैं। क्योंकि मार्क्स के बारे में मेरी विवेचना द्वंद्वात्मक है, मुझे यह स्पष्ट नजर आता है कि तीनों खंडों के मध्य जो संबंध है वह द्वंद्वात्मक है। इससे मेरा तात्पर्य यह है कि मार्क्स

पूंजीवाद के विश्लेषण और उसकी समीक्षा को इस तरह प्रस्तुत करते हैं जिससे पाठकों को पूंजीवाद को द्वंद्वात्मक पद्धति से समझने में मदद मिल सके।

पहले खंड में मार्क्स प्राथमिक तौर पर पूंजीवाद के सर्वाधिक आधारभूत सामाजिक संबंध यानी पूंजी के सारतत्व के अंतर्य पर दृष्टि केंद्रित करते हैं। यह वह सबंध यानी अंतर्य है जिसको वह उत्पादन की परिधि में अवस्थित देखते हैं या अधिक सटीक ढंग से कहें तो उन गतिविधियों के अंतर्गत देखते हैं जिनके बीच लोग अपने भौतिक विश्व का सृजन करते हैं। लेकिन इससे पहले, पहले खंड के भाग एक में, वह एक अति सामान्य या अमूर्त माडल स्थापित करते हैं जिसके माध्यम से हम पूजीवाद के सर्वाधिक आधारभूत अंतर्विरोधों और उसकी पूर्व शर्तों की पहचान कर सकते हैं। वह दिखाते हैं कि पूजीवाद का अंतर्य किस तरह से पण्य के आरंभिक रूप से विकसित होता है। वह इस रूप के उद्गम और विकास को पण्य बाजारों में पण्य उत्पादकों द्वारा अपने पण्य के वितरण और विनिमय के लिए अपनाई जाने वाली प्रत्यक्ष विनिमय प्रक्रिया में देखते हैं। फिर, पहले खंड के संपूर्ण पाठ में, वह उत्पादन की पूंजीवादी प्रक्रिया में पैठ करते हुए पूंजीवाद के उदय से लेकर इसके परिपक्व समाजार्थिक संरचना में बदलने जाने की स्थितियों तक ले जाते हैं। उत्पादन की पूंजीवादी प्रक्रिया वह प्रक्रिया है जिससे गुजरते हुए पण्य अपने पूर्ण विकसित रूप में आ जाता है, और पूंजी के निर्माण का कारक बनता है। यहां हम पूंजी के अंतर्य के सर्वाधिक आधारभूत पहलुओं को देखते हैं और देखते हैं कि कैसे यह अंतर्य आकार ग्रहण करता है और लगातार पुनरुत्पादित होता रहता है।

इस अंतर्य, या 'सामान्यत: पूंजी' की गत्यात्मकता वितरण और विनिमय की परिधि, या गतिविधियों, के मध्य पूर्णता प्राप्त करती है, और जो गतिविधिया इस परिधि के भीतर चली हैं वे *कैपीटल* खंड दो में निरूपित की गई हैं। इसलिए 'सामान्यत: पूंजी' का समग्र चित्र—पूंजीवाद के अंतर्य के विकास और उसके परिचलन की पूरी प्रकिया—*कैपीटल* के खंड एक (मार्क्स, 1867) और खंड दो (मार्क्स, 1878) से बनता है। वह परिपथ जिसमें यह अंतर्य पूंजीवाद की जटिल और मूर्त संपूर्णता के प्रकारों, श्रेणियों, प्रवृत्तियों ओर नियम विधानों के विविध रूपों में प्रकट होता है, और जिसके अंतर्गत हम विभिन्न पूंजीवादी फर्मों को एक दूसरे से प्रतिद्वंद्विता करते पाते हैं, *कैपीटल* के खंड तीन का विषय बना है (मार्क्स, 1865)। इन खंडों और इनके बीच के तादात्म्य को परखने का एक बहुत लाभदायी तरीका इन्हें *अंतर्य* यानी पूंजीवाद के एक सामान्य, सरल या अमूर्त रूप से होते हुए इस *प्रकटीकृत* या मूर्त और जटिल परिपक्वता वाले रूप में आने की प्रक्रिया के निरूपण के बतौर देखना है। अंतर्य मूर्त और जटिल पूर्णता के रूप में प्रकट होता है लेकिन

इस श्रेणियों, या रूपों, जिनसे हम पूंजीवादी व्यवस्था की दिन-प्रतिदिन की कार्यप्रणाली के दौरान मुठभेड़ करते रहते हैं, के द्वंद्वात्मक विकास के विश्लेषण से ही ठीक से पकड़ सकते हैं।

बहुत से मार्क्सवादी और गैर मार्क्सवादी भी तीनों खंडों को पूंजीवाद के विकास के इतिहास के रूप में देखते हैं। विशेषकर पहले खंड को ऐतिहासिक विवरण के बतौर पढ़ना लुभावना लग सकता है, परंतु ऐसा करने से हम उस क्षमता से हाथ धो सकते हैं जिसे पूंजीवाद के मूलभूत और अंतर्निहित अंतर्विरोधों को उजागर करने के लिए मार्क्स का विश्लेषण हमें प्रदान करता है। ये वे अंतर्विरोध हैं जो आज भी उतने ही वास्तविक हैं जितने कि मार्क्स के समय में थे। इतिहास की तरह पहले खंड को पढ़ना लुभावना इसलिए लगता है क्योंकि यह अलग-अलग तरह के इतिहास का सम्मिश्रण है। जैसा कि मैंने पहले सुझाया था, यह वह खंड है जिसमें मार्क्स ने अंतर्य यानी रूपों और श्रेणियों के उन सर्वाधिक मूलभूत रूपों को उद्घाटित किया है जिनमें पूंजीवाद के अंतर्विरोध प्रकट होते हैं—उस प्रक्रिया की व्याख्या की है जिसके द्वारा अंतर्य (इसके संबंध, रूप या श्रेणियां) मानव गतिविधियों के माध्यम से निरंतर गति करता है, विकसित होता है और लगातार पुनरुत्पादित होता रहता है। इस प्रकट होने, और वास्तविक प्रक्रिया की भी जिसके माध्यम से पूंजी का उत्पादन होता है, की व्याख्या करते हुए मार्क्स ने दोनों काम किए—ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत किए और विवरण की संपदा प्रदान की ताकि मार्क्स के समकालीन पाठकों के अनुभवों और अधिक दूर-की-नहीं स्मृतियों के भीतर ही उन तर्कों और प्रवृत्तियों की पहचान की जा सके जो अंतर्य से पैदा होते हैं। हमारे लिए, निश्चित ही, यह सारा विवरण पूंजीवाद के ऐतिहासिक विकास की तरह ही सामने आता है। यह स्मृत करना महत्वपूर्ण है कि मार्क्स ने *कैपीटल* को श्रमिक वर्ग के पाठकों के लिए लिखा था—उन्हें पूरी तरह यह समझने की क्षमता प्रदान करने के लिए कि पूंजीवादी व्यवस्था किस तरह उनका दमन और शोषण करती है, और किस तरह यह व्यवस्था संभव हुई, और यह कि वे किस तरह इसे चुनौती दे सकते हैं या बदल सकते हैं।

पहले खंड पर विचार करने का सर्वश्रेष्ठ या सर्वाधिक सही तरीका इसे दोनों ही रूपों में समझने का है, मूर्त और जटिल यथार्थ—प्रतिद्वंद्विता में आया कई पूंजियों का कुल जोड़—से प्राप्त किए गए सामान्य माडल के रूप में, और दूसरे उस इतिहास के रूप में कि प्राक् पूंजीवादी समाजों के उपांत पर पूंजीवाद की पूर्व शर्तें या पूर्व परिस्थितियां कैसे विकसित हुईं—यानी पुरानी सामाजिक संरचनाओं के हाशियों पर सक्रिय व्यक्तियों की गतिविधियों में से पूंजीवादी प्रवृत्तियां कैसे पैदा हुईं। इसके

अलावा, यह उन ऐतिहासिक स्थितियों का भी वर्णन करता है, जिनमें पूंजीवाद सबसे पहले एक पूर्ण विकसित समाजार्थिक व्यवस्था के रूप में प्रकट हुआ— ऐतिहासिक रूप से एक विशिष्ट संरचना के रूप में।[7] जैसा कि रोजडोल्स्की (1977) ने कहा है, पूंजीवाद के मार्क्स द्वारा किए गए विश्लेषण का अनुक्रम 'ऐतिहासिक और तार्किक', दोनों ही है (पृ. 39)। ऐतिहासिक विशिष्टता का विचार, जिसका मैंने अभी उल्लेख किया है, मार्क्स की *व्याख्या* में बहुत महत्वपूर्ण है और मैं जल्दी ही इस विचार पर वापस लौटूंगी। यह मुख्य स्वरों में से एक है, मैंने पहले इसका उल्लेख किया है, जो मार्क्स के लेखन में सर्वत्र मौजूद है। हालांकि पहले मैं दूसरे मुख्य स्वर पर विचार करूंगी --पूर्व शर्तों और परिणामों के बीच के संबंध पर।

पूंजीवाद को पूरी तरह समझने या इसके सत्य को ठीक ग्रहण करने के लिए पूंजी को एक *प्रक्रिया* और एक *संबंध*, दोनों ही रूपों में विचारा जाना चाहिए। मार्क्स प्राय: प्रक्रिया और संबंध दोनों की ही पूर्व शर्तों या पूर्वानुमानिकताओं की बात करते हैं। जिन कापियों में उन्होंने *कैपीटल* का प्रार्थामक पांडुलेखन किया था और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की प्रस्तुति के लिए समूची परियोजना तैयार की थी, उनमें वह पूर्व शर्तों और परिणामों के बारे में विशेषतया स्पष्ट हैं और इनमें हम आत्म स्पष्टीकरण की उनकी अपनी प्रक्रिया के साक्ष्य देख सकते हैं। (देखिए *ग्रुंडरिस्स* [1858] की मार्टिन निकोलस [1973] द्वारा लिखित भूमिका, 1857 58 की सर्दियों में लिखी गई और हाल ही में प्रकाशित हुई टिप्पणियों का संदर्भ)। मार्क्स जिस महत्वपूर्ण विचार को प्रेषित करना चाहते हैं वह यह है कि जो पूर्व शर्त और एक अधिक सरलीकृत रूप में शुरू होता है वह परिणाम या परिणति बन जाता है— और एक अत्यधिक विकसित रूप भी ग्रहण कर लेता है (वुड, 1995)। इसके अलावा, एक समय के किसी क्षण का परिणाम प्रक्रिया के पुनरुत्पादन की पूर्व शर्त बन सकता है, और जटिलता के उच्चतर स्तर पर आगे का विकास भी बन सकता है। पूर्व शर्तों की पहचान परिणामों के तार्किक और सुविवेचित विश्लेषण से होती है—यह विश्लेषण परिणामों के द्वंद्वात्मक प्रकटीकरण का होता है जो इस बात की सम्यक व्याख्या का आधार उपलब्ध कराता है कि ये परिणाम अस्तित्व में कैसे आए। पूंजीवाद की गत्यात्मक प्रक्रिया में—वह प्रक्रिया जिसके द्वारा अंतर्य गति करता है और परिपक्वता और जटिलता के नए स्तरों में विकसित होता है—गतियों की निर्मिति करने वाली पूर्व शर्तों और परिणामों का यह विचार मार्क्स के चिंतन का एक मूल तत्व है। पूर्व शर्तो से परिणामों तक की गति—या सामान्य, अमूर्त अंतर्य से जटिल और मूर्त परिणति तक की गति—तार्किक और ऐतिहासिक दोनों ही है।

जैसे-जैसे हम पहले खंड में पण्य विनिमय के प्रारंभिक विकास से पूंजीवाद के प्रारंभिक चरणों, और फिर इसकी पूर्ण विकसित सामान्य अवस्था या अंतर्य के पूर्ण फलन की ओर बढ़ते हैं, वैसे-वैसे मार्क्स पूंजी के तर्क और इतिहास को उद्घाटित करते जाते हैं। दूसरे शब्दों में, मार्क्स उन विचार श्रेणियों और रूपों को प्रस्तुत करते हैं जिनके माध्यम से वह, एक-दूसरे के प्रति तार्किक संबंध के अनुसार और अपने भ्रूणावस्थीय रूपों के ऐतिहासिक विकास के अनुसार, पूंजी का विश्लेपण करते हैं। ये संकल्पनाएं, उम्मीद की जानी चाहिए कि, उस समय पूरी स्पष्ट हो जाएंगी जब मैं पूंजीवाद की मार्क्स की व्याख्या के अपने विवेचन में विभिन्न बिंदुओं पर पूर्व शर्तो और परिणामों का उल्लेख करूंगी।

ऐतिहासिक विशिष्टता मार्क्स के चिंतन की दूसरी वह संकल्पना या मुख्य स्वर है, मेरे विचार से जिसका प्रमुखता मे उल्लेख किया जाना चाहिए। यह पूंजीवाद के उनके विश्लेपण और समीक्षा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक है। *ग्रुंडरिस्स* की अपनी 'भूमिका' में निकोलस (1973, पृ. 39-42) ने इसकी केंद्रीयता पर बल दिया है, और पूंजीवाद की ऐतिहासिक रूप से विशिष्ट प्रकृति पर सायर (1987), वुड (1995), पोस्टोन (1996) और कुछ हद तक ओलमान (1976) ने भी पर्याप्त जोर दिया है। मार्क्स द्वारा इस संकल्पना के प्रयोग का अर्थ है कि पूंजीवाद की उनकी समीक्षा—पूंजीवाद के सार्वभौमिक रूप, इसके प्रभुत्व के व्यापक प्रभाव, एक पूर्व निश्चित छोर की ओर इसकी प्रयोजनमूलक आवर्ती गति यानी लाभ को अधिकाधिक बनाना और पूंजी संचयन आदि—उन तत्वों की समीक्षा है जो पूंजीवाद के विशेष गुण हैं। पूजीवाद के ये तात्त्विक गुण इसके दूसरे तात्विक गुणों यथा, गरीबी के इसके ऐतिहासिक दृष्टि से विशिष्ट रूप, अन्याय और शोषण की तुलना में अधिक अपरिहार्य या प्राकृतिक नहीं है, और इसके उन्मूलन में ये समान रूप से महत्वपूर्ण होंगे। इसका तात्पर्य है, निश्चय ही, कि *अंतर्य* और *प्रकट स्वरूप या प्रकटीकरण* जैसे पद हर उस स्थिति के संदर्भ में होंगे जो पूंजीवाद के लिए ऐतिहासिक रूप से विशिष्ट हैं—यानी जीवन के हमारे कुल अनुभव का वह भाग जिसके लिए प्रत्यक्षतः पूजीवाद उत्तरदायी हो। विडंबना यह है कि मार्क्स और मार्क्सवाद पर हमला, विशेषकर उत्तर आधुनिकतावादियों द्वारा इसलिए किया गया है कि मार्क्सवाद समाहारी, 'तत्ववादी' और प्रयोजनमूलक सामाजिक सिद्धांत प्रस्तुत करता है। अगर यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य नहीं होता कि सचमुच कुछ मार्क्सवादियों ने मार्क्स को ठीक इसी तरह प्रस्तुत किया है तो इन सारी आलोचनाओं को मार्क्स की मीमांसा की घोर भ्रांत व्याख्या और मिथ्या निरूपण के रूप में खारिज किया जा सकता था। इस विवाद में शामिल होने की मेरी कोई मंशा नहीं है सिवा इसके कि

पूंजीवाद समाज के सिद्धांत की रक्षा में मैं स्वयं मार्क्स का ही इस्तेमाल करूं। पहली बात तो यह है कि अगर उनके सामाजिक सिद्धांत की ऐतिहासिक विशिष्टता को पहचान लिया गया होता तो भ्रांत व्याख्या की यह समस्या पैदा ही नहीं हुई होती कि मार्क्स की व्याख्याएं अन्य समाजार्थिक सिद्धांतों की अपेक्षा पूंजीवाद को लेकर हैं, और इस अर्थ में पूंजीवाद समाजों में जीवन के प्रत्येक पहलू को लेकर हैं, यह तथ्य बहुत महत्वपूर्ण है। और यही वह स्पष्ट धारणा है जो उनके विचारों के विवचन का मेरा मुख्य आधार है। और मार्क्स के दृष्टिकोण का आखिरी महत्वपूर्ण मगर प्राय: विवादास्पद या न पहचाने जा सकने वाला पक्ष उस पद्धति से संबंधित है जिससे वह पूंजीवाद की द्वंद्वात्मक संकल्पना करते हैं, और इस अर्थ में उस पद्धति से जुड़ा है जिसे वह संकल्पनाओं या वैचारिक रूपों के प्रयोग में पूरी सटीकता के साथ प्रयुक्त करते हैं।

मार्क्स की द्वंद्वात्मक संकल्पना के मूलभूत वैचारिक तत्व और संकल्पनात्मक औजार

इस पुस्तक के माध्यम से, चाहे वह मार्क्स का मेरा विवचन हो या फिर आलोचनात्मक शिक्षा का, मैं यह विचार प्रेषित करना चाहती हूं कि चिंतन एक गतिशील प्रक्रिया है —निष्क्रिय अथवा मननात्मक होने के बजाए अत्यधिक सक्रिय। मार्क्स की बात को या कहिए कि किसी भी आलोचनात्मक, द्वंद्ववादी चिंतक की बात करें तो उनके चिंतन में चीजों को पकड़ने की और जिस विषय की पडताल की जा रही है उसमें लगातार पैठने की एक असाधारण रूप से गतिशील और वेगवान, मगर साथ ही बहुत ही सतर्क प्रक्रिया शामिल रहती है। यह एक ऐसी गतिविधि होती है जिसकी व्याख्या आसान नहीं होती, मगर इस गतिविधि या प्रक्रिया को मार्क्स के पाठों पर काम करते हुए आप देख सकते हैं और महसूस कर सकते हैं। जैसे जैसे मैं मार्क्स की विशिष्ट चिंतन प्रणाली को समझने के लिए आवश्यक आधारभूत प्रत्ययों की पहचान और विवेचना करूंगी, यह बात अधिक स्पष्ट होती जाएगी। ये प्रत्यय या विचार रूप न केवल उनके चिंतन को आधार प्रदान करते हैं बल्कि वह इनका इस्तेमाल इस तरह करते हैं जैसे ये 'औजार' हों जो उन्हें पूंजीवाद को उघारने या उजागर करने और फिर उसके जटिल विकास और गति को व्याख्यायित करने में सक्षम बनाते हों, उस तरीके की व्याख्या करने में जिसमें यह व्यवस्था सामान्यत: और आवर्ती संकटों, दोनों स्थितियों में कार्य करती है। कभी-कभी वह एक या दूसरे प्रत्यय का इस्तेमाल पूंजीवाद के सतही प्रकट स्वरूप को चीरने के लिए शल्य चिकित्सक के चाकू की तरह करते हैं ताकि वे इसके स्वभावगत, अंतर्निहित अंतर्य

या सारतत्व को उद्घाटित कर सकें। कभी-कभी वे इनमें से कुछ का इस्तेमाल भवनशिल्पी या काष्ठशिल्पी के औजारों की तरह करते हैं जिससे वह रूपों और संबंधों के उस संजाल की अपनी व्याख्या को निर्मित कर सकें, जिसमें पूंजीवाद को आकर देने वाली मानव गतिविधियों का संपूर्ण ढांचा समाहित रहता है। यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि उनके सभी प्रत्यय या अवधारणात्मक 'औजार' अंतर्संबंधित हैं—कि एक की परिभाषा दूसरे में परिव्याप्त या उससे जुडी हुई और इस तरह परस्पर एक-दूसरे के लिए आवश्यक होती है। इसलिए, इसके बावजूद कि मैंने उनका क्रमिक ढंग से विवेचन किया है, उन पर पूंजीवाद की मार्क्स की द्वंद्वात्मक सकल्पना के भीतर निर्मित होती हुई उनकी अन्विति (यूनिटी) के रूप मे विचार किया जाना चाहिए।

संभवत: मार्क्स के प्रत्ययों के प्रयोग का सर्वाधिक असामान्य पक्ष यह है कि वह प्राय: एक ही वस्तु के संदर्भ में विभिन्न प्रत्ययों का इस्तेमाल करते हैं या, इसके विपरीत, भिन्न देखने वाली वस्तुओं के संदर्भ मे एक ही प्रत्यय का इस्तेमाल करते हैं (ओलमान, 1976)। जब वह भिन्न दिखने वाली या अस्तित्व के भिन्न रूपों को अभिव्यक्ति देती दिखने वाली वस्तुओ के लिए एक ही प्रत्यय का इस्तेमाल करते हैं, तो वह उनके अंतर्संबंध की ओर संकेत कर रहे होते हैं। और क्योंकि वह यह बताने के लिए कि रूप और संबंध कैसे गति करते और विकसित होते हैं प्रत्ययों का इस्तेमाल सधे हुए औजारो की तरह करते हैं, इसलिए उन्हें विकास और गत्यात्मकता दोनों को ही अभिव्यक्त करने के लिए भिन्न प्रत्ययों या विचार-रूपों के प्रयोग की आवश्यकता होती है। प्रत्येक नए प्रत्यय के साथ वह हमें किसी संबंध या रूप को एक नए कोण से देखने या विचार करने के लिए आहूत करते हैं—यानी द्वंद्वात्मक प्रक्रिया में इसके किसी अन्य रूप के बजाए किसी विशिष्ट रूप को देखने या इसके विपरीत किसी विशेष क्षण मे उसके उसी रूप को दूसरी तरह से देखने के लिए (ओलमान, 1999)। विशेष तौर पर, उन पर आरोप लगाया जाता है कि वर्ग की उन्होंने कोई स्पष्ट अवधारणा नहीं दी है। हालांकि, जैसा कि मैं इसी अध्याय में आगे स्पष्ट करूगी, इससे अधिक सत्य से परे कोई बात नहीं हो सकती। ई पी थाम्पसन (1974) ने अंग्रेजी श्रमिक वर्ग के अपने उत्कृष्ट अध्ययन में इसकी स्पष्ट पहचान की थी, जिसमें मार्क्स से संदर्भ उठाते हुए उन्होंने वर्ग को एक वस्तु के रूप में नहीं बल्कि एक संबंध के रूप में, और एक 'बनते हुए' संबंध के रूप में भी, निरूपित किया था। मुझे इस पर ध्यान देना चाहिए कि अपने प्रत्ययों की मार्क्स की परिभाषाएं—यानी वे अर्थ जो वह उन्हें प्रदान करते हैं—एक ऐसी चीज है जिसका अर्थ उस युक्ति से निकाला जाना चाहिए जिस युक्ति से वह उनका इस्तेमाल करते

हैं। हालांकि जब आप प्रत्ययों की उनकी युक्ति को समझ लेते हैं, तो इनके प्रयोग की उनकी परिशुद्धता और निरंतरता यह संभव बना देती है कि उन्हें (मार्क्स को) सुस्पष्ट, और मेरे विचार से, अधिक विश्वसनीय ढंग से समझा जा सके।

द्वंद्वात्मक चिंतन के 'निर्माण का एक पत्थर' द्वद्वात्मक अंतर्विरोध है। इस प्रकार के अंतर्विरोध को अगर उन्होंने कहीं सर्वाधिक सुस्पष्टता से परिभाषित या व्याख्यायित किया है तो एंगेल्स के साथ सहलिखित एक प्रारंभिक रचना में किया है (मार्क्स और एंगेल्स, 1844), जहां वे विशेष रूप से सर्वहारा और पूंजी के बीच प्रतिपक्ष (एंटीथिसिस) या द्वंद्वात्मक अंतर्विरोध का सवाल उठाते हैं।[3] अपनी बाद की रचनाओं में वे इस अंतर्विरोध का 'उत्पादन के सामाजिक संबंध' के रूप में उल्लेख करते हैं (उदाहरण के लिए, मार्क्स, 1866, पृ. 1060; 1867, पृ. 170), और वे प्राय: एक द्वद्वात्मक अंतर्विरोध को दो विरोधी तत्वों या *दो द्वंद्वियों के बीच की अन्विति* (एकता) के नाम से संबोधित करते हैं (उदाहरण के लिए, मार्क्स, 1867 पृ. 199), और बहुलता से ध्रुवांत द्वंद्वियों (विरोधी तत्वों) या द्वंद्वों का संदर्भ देते हैं, लेकिन अधिक प्रमुखता से 'वास्तविक अंतर्विरोधों' (उदारण के लिए, 1867, पृ 198) और 'प्रतिपक्षों' (उदाहरण के लिए, पृ 209) का उल्लेख करते हैं। अंतर्विरोधों का हमारा सामान्य प्रत्यय या विचार रूप औपचारिक तर्क से निकाला गया है जहां अंतर्विरोध व्यक्ति के व्यवहार की ऐसी अतार्किक अभिव्यक्तियां या तर्क या व्यवहार के ऐसे पहलू होते हैं जिनमें परस्पर कोई संगति नहीं दिखती और जिनका कोई अर्थ नहीं होता। द्वंद्वात्मक अंतर्विरोध एक भिन्न प्रकार का अंतर्विरोध है। रूपात्मक हों (बाह्य आकारी) या तार्किक, अंतर्विरोध व्यक्ति के विचार और व्यवहार में बने रहते हैं जबकि द्वंद्वात्मक अंतर्विरोध हमारी भौतिक वास्तविकता में अवस्थित होते हैं और अधिक स्पष्टता से कहें तो हमारे भौतिक विश्व के सामाजिक संबंधों में रहते हैं। अंतर्विरोधों के बारे में इस तरह की विचारणा—यानी द्वंद्वात्मक संकल्पना या अवधारणा के अनुसार—प्राचीन यूनानी दर्शन में तलाशी जा सकती है और मार्क्स के समय में जी.डब्ल्यू.एफ हीगेल के दर्शन में देखी जा सकती है। द्वंद्वात्मक अंतर्विरोध की परिभाषा जो मैंने मार्क्स के लेखन से निकाली है, वह इस प्रकार है : यह उन दो द्वंद्वियों (या विरोधी तत्वों) के मेल से बनी एक एकात्मक अन्विति है, जो अपने वर्तमान अस्तित्वगत स्वरूप में और अपनी ऐतिहासिक भूमिका में उस परिपथ से बाहर कभी संभव नहीं हो सकते थे जिस परिपथ से वे संबंधित हैं। इसके अलावा, प्रत्येक द्वंद्वी की आंतरिक प्रकृति और इसका विकास दूसरे द्वंद्वी के साथ उसके संबंध से निर्मित और निर्धारित होते हैं।

मार्क्स का विश्लेषण उन द्वंद्वात्मक अंतर्विरोधों पर केंद्रित करता है जो विरोधात्मक

होते हैं। इसलिए इसकी पूर्ण परिभाषा को यह भी रेखांकित करना चाहिए कि दो द्वंद्वियों यानी विरोधी तत्वों में से एक 'सकारात्मक' हो। संबंध को बनाए रखने के प्रयास के अर्थ में—यह सकारात्मक रूप मे संबंध को सहयोग देता है और इससे लेता है। दूसरा द्वंद्वी 'नकारात्मक' होता है इस अर्थ में कि संबंध इसके लिए क्षयकारी या शत्रुतावत होता है। इस संबंध में रहते हुए दोनों में से कोई भी प्रतिद्वंद्वी *मूलभूत रूप से* परिवर्तित नहीं हो सकता—जो एक है और जिस तरह से वह विकसित और गति करता है वह सब दूसरे के ऊपर निर्भर होता है। 'नकारात्मक' द्वंद्वी के लिए इस शत्रुता को समाप्त करने का जो एकमात्र रास्ता होता है वह इस संबध के उन्मूलन का होता है। मार्क्स इसको 'नकारात्मकता का नकार' कहते हैं (मार्क्स, 1867, पृ. 329)। इसीलिए सर्वहारा और पूंजी के बीच द्वंद्वात्मक अंतर्विरोध के उदाहरण में, नकारात्मक के नकार का परिणाम एक वर्ग रहित समाज की रचना के रूप में आएगा। सर्वहारा एक अलग और शोषित वर्ग के रूप में नहीं रहेंगे और इस तरह पूंजीपति वर्ग भी अस्तित्व में नहीं रहेगा, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे लोग जो कभी इन वर्गो में शामिल थे, अस्तित्व में नहीं रहेंगे। दूसरे शब्दों में, यह संबंध ही होता है जो उन्मूलित होता है न कि आवश्यक रूप से वे लोग जो इसमें शामिल होते हैं, और क्योंकि यह संबंध ही होता है जिसमें उनकी मनुष्यवत स्थिति को ढाला और निर्धारित किया होता है इसलिए नकार उन्हें ऐस नए रिश्तों के निर्माण के लिए जिनके बीच भिन्न तरीके मे रह सकें, स्वतंत्र कर देता है। और इस तरह अपनी निजता के अर्थ में, अपनी सामाजिक पहचान के अर्थ में और मानवीयता के अर्थ में वे अपना, क्षमताओं का पूरा इस्तेमाल कर सकते हैं। इनका अर्थ है कि मार्क्स के लिए क्रांति का अर्थ केवल हमारी आर्थिक और सामाजिक दशाओं का रूपांतरण नहीं है बल्कि स्वयं हमारा और सामाजिक प्राणी के रूप में हम जिस परिपथ से संबंधित हैं उनका भी रूपांतरण है।

ये शत्रुतावन द्वंद्वात्मक अंतर्विरोध तार्किक रूप से भी परस्पर विरोधी होते हैं क्योंकि यद्यपि प्रत्येक द्वंद्वी या विरोधी को स्वयं वह जो है वह होने के लिए दूसरे की 'आवश्यकता' होती है, दोनों की ही स्वतंत्रता और दोनों का ही वास्तविक अस्तित्व एक-दूसरे पर उनकी निर्भरता के कारण अनेकानेक रूपों में बाधित और सीमित होता है। इसके अलावा किसी भी एक की प्रगति या बढ़त दूसरे के क्षय के लिए होती है, और इस तरह दीर्घ काल में स्वयं संबंध के लिए ही नष्टकारी बनती है। संबंध टकरावपूर्ण और शत्रुतावत भी होता है क्योंकि दोनों द्वंद्वियों में से एक जो है वह वह नहीं है जो होना वह चाहता यदि उसके पास विकल्प होते। वह संबंध के अंतर्गत ही अपनी स्थिति के कारण सीमित, प्रभावित, शोषित और प्राय: दमित

होता है। यहां मैं द्वंद्वियों की विवेचना इस रूप में कर रही हूं जैसे कि वे व्यक्ति या व्यक्ति समूह हों, जैसा कि अधिकांश मामलों में वे होते भी हैं। द्वंद्वात्मक अंतर्विरोधों में दो द्वंद्वी वे ढांचे प्रक्रियाएं और परिपथ भी हो सकते हैं जो मानवीय अस्तित्व के कुछ पक्षों में समाए रहते हैं, लेकिन इन सभी मामलों में अनुभव के क्षेत्रों में यह मनुष्यों की गतिविधि ही होती है जो किसी न किसी अर्थ में सीमित और प्रतिबंधित होती है और इस तरह शत्रुतावत होती है। एक द्वंद्वात्मक अंतर्विरोध को सम्यक रूप से समझने के लिए दो द्वंद्वियों के बीच आंतरिक कड़ी को निर्मित करने वाले संबंध की वास्तविक प्रकृति पर विचार करना आवश्यक है। यही वह अगला प्रत्यय या अवधारणात्मक 'औजार' है जिसकी मैं विवेचना करूंगी।

मार्क्स का द्वंद्वात्मक चिंतन और संकल्पना चिंतन का एक संबंधात्मक रूप है। हालांकि यह सबंधात्मक चिंतन का कोई भी रूप नहीं है, बल्कि संबंधों के *अर्थ* में चिंतन का एक अति विशिष्ट रूप है। जहां तक मैं जानती हूं बर्टेल ओलमान (1976, पहली बार 1971 में प्रकाशित) वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने मार्क्स के चिंतन में 'आंतरिक संबंधों के दर्शन' के महत्व का जोर दिया था। ओलमान कहते हैं कि हीगेल की मीमांसा का यह एक महत्वपूर्ण पक्ष है जिसे मार्क्स ने बनाए रखा और यह द्वंद्वात्मक चिंतन को समझने के लिए अनिवार्य है (पृ. 35)। इस 'दर्शन' की व्याख्या के लिए---संकल्पनात्मक 'औजार' या संकल्पना की विधि जैसा कि मैंने इसे कहा है---*आंतरिक संबंधों* के अर्थ में चिंतन बाह्य संबंधों के अर्थ वाले चिंतन से (संबंधात्मक चिंतन का दूसरा रूप) कैसे भिन्न हैं, मैंने पूरी तरह ओलमान पर (देखिए ओलमान भी, 1999) निर्भर करने के बजाए टालमेन (1981) का भी सहारा लिया है। मैं गैर संबंधात्मक या निरपेक्ष चिंतन से शुरुआत करूंगी ताकि मैं इनकी भिन्न विशेषताओं को स्पष्ट कर सकूं।

हम विचार रूपों या प्रत्ययों का निर्माण इसलिए करते हैं ताकि हम उन प्रत्यक्षतः विविध और जटिल साक्ष्यों को संघटित कर सकें और अर्थ निकाल सकें जिनसे हम वास्तविक विश्व में मुठभेड़ करते रहते हैं। जब हम यह पाते हैं कि कुछ प्रत्यक्षतः भिन्न वस्तुएं आपस में ऐसे गुणों और विशेषताओं में भागीदारी करती हैं जो उन्हें अन्य सभी दूसरी वस्तुओं से भिन्न बनाती हैं तो इससे हमारा चिंतन अधिक आसान और स्पष्ट हो जाता है और अगर हम उन सभी को संबोधित करने के लिए एक अकेले विचार रूप या प्रत्यय का प्रयोग कर पाते हैं तो इससे अपने चिंतन को संप्रेषित करने की हमारी क्षमता संभव हो जाती है। प्राकृतिक विश्व के दो सर्वाधिक सामान्य रूप पेड़-पौधे और पशु हैं। यदि हम उन्हें उनकी जैविक विशिष्टताओं के अर्थ में देखें तो, वैकल्पिक रूप से, हम भौतिक विश्व को ठोस, तरल और गैस के

रूप में भी वर्गीकृत या श्रेणीबद्ध कर सकते हैं। ज्ञान के कुछ विशेषीकृत क्षेत्र, किसी एक विशेष श्रेणी या इसके किसी एक उपांग से संबंधित हो सकते हैं लेकिन बहुत से आधुनिक विज्ञान और अध्ययन के दूसरे क्षेत्र इन श्रेणियों के पारस्परिक संबंधों पर विचार करते हैं।

जैसा कि मैंने पहले संकेत दिया था, तर्कपरकता से सोचने के दो तरीके हैं। जब हम चीजों को बाह्य रूप से संबधित होने की स्थिति में समझते हैं तब हम अपना ध्यान इस बात पर केंद्रित रखते हैं कि जब एक तत्व पक्ष (एनटिटी) के विशिष्ट गुण दूसरे तत्व पक्ष के विशिष्ट गुणों से *अंत:प्रक्रिया* करते हैं तो क्या परिणाम निकलता है। विशिष्ट गुण, या तत्व पक्षों की आतंरिक प्रवृत्ति परिवर्तित नहीं होती (या बदलती हुई दृष्टिगोचर नहीं होती)। एकमात्र परिवर्तन परिणाम का वह उत्पादन होना है जो प्रत्येक तत्व पक्ष के अपने मूल स्वरूप से भिन्न और गोचर होना है। यह उनके भिन्न विशिष्ट गुणों में से कुछ का संयोजन होता है। जब एक बार यह निर्मित हो जाता है तो यह उन तत्व पक्षों पर निर्भर रहने को बाध्य नहीं होता जिन्होंने उसे उत्पन्न किया है। दूसरे शब्दों में, यह पूरी तरह से भिन्न और भिन्न पहचान युक्त होता है। दूसरी ओर जब हम चीजों की संकल्पना आतंरिक संबंधों के अर्थ में करते हैं, तो हम दो तत्व पक्षों या दो द्वंद्वियों के *आंतरिक* संबंध पर ध्यान केंद्रित करते हैं, और इस बात को समझने का प्रयास करते हैं कि उस संबंध की प्रकृति प्रत्येक द्वंद्वी के अंतर्निहित गुणों के आंतरिक विकास को कैसे आकार देता है, नियमित करता है या निर्धारित करता है। कभी-कभी नए विशिष्ट गुण को भी उत्पन्न कर देता है जो द्वंद्वियों में से कभी एक में तो कभी दूसरे में अंतर्निहित हो जाते हैं। हम उन परिणामों पर भी ध्यान केंद्रित करते हैं जो आकार देने या निर्धारित करने की प्रक्रिया में से विकसित होते हैं—ये परिणाम सामान्यत: संबंध के भीतर दो द्वंद्वियों को बांधने या उनके बीच 'मध्यस्थता' करने का काम करते हैं। इस मामले में, हालांकि, परिणाम आंतरिक रूप से संबंध से जुड़ा रहता है। इसका अस्तित्व या इसके अस्तित्व का आवर्ती पुनरुत्पादन संबंध के निरंतरतापूर्ण अस्तित्व के ऊपर निर्भर करता है। ये परिणाम द्वंद्वियों के आंतरिक संबंध की अपेक्षा वह होते हैं जिन्हें हम तत्काल देख सकते हैं, और इस तरह वे उस संबध को जिसमें से वे पैदा हुए हैं को ढंकने या उसके साथ मध्यस्थता करने की प्रवृत्ति दिखाते हैं और कभी-कभी दोनों द्वंद्वियों या उनमें से किसी एक को ढंकने की प्रवृत्ति दिखाते हैं।

आंतरिक संबंधों का प्रत्यय या धारणा मार्क्स की पूंजीवाद की समूची व्याख्या को आधार प्रदान करता है और यह उनकी द्वंद्वात्मक संकल्पना का सर्वाधिक आवश्यक तत्व है। उदाहरण के लिए, द्वंद्वात्मक चिंतन का 'निर्माण पत्थर'—

द्वंद्वात्मक अंतर्विरोध वास्तव में आंतरिक रूप से संबंधित 'द्वंद्वियों की अन्विति' है। इन पदों को अंतर्बदलनीय तरीके से प्रयुक्त किया जा सकता है। हालांकि मैं उनका प्रयोग बहुलता से साथ साथ करती हूं ताकि उनके अर्थ पर बल दिया जा सके। इसके अलावा—और यह एक अत्यधिक महत्वपूर्ण बिंदु है—आंतरिक संबंध या द्वंद्वात्मक अंतर्विरोध पूंजीवाद की मार्क्स की व्याख्या में इसलिए महत्वपूर्ण है कि मार्क्स ने उन्हें पूंजीवाद के भौतिक यथार्थ में अंतर्निहित पाया था। अगर उनकी बौद्धिक पृष्ठभूमि हीगेलवादी नहीं रही होती तो मार्क्स पूजीवाद की आंतरिक रूप से संबंधित द्वंद्वात्मक प्रकृति को पहचानने में उसी तरह असफल हो सकते थे जिस तरह उनसे पहले के और उनके बाद के अनेक चिंतक हुए। इसके बावजूद, जैसा कि मैंने पहले उल्लेख किया है (ओलमान, 1999) मार्क्स का वास्तविक विश्व को समझने में द्वंद्वात्मक संकल्पना का प्रयोग, और इस तरह 'आंतरिक संबंधों के दर्शन' के प्रयोग में भी इस मीमांसा के प्रति उन्हें निष्ठावान रहने की क्षमता प्रदान की। हीगेल का आदर्शवाद ऐसा नहीं कर सकता था। अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि वे चिंतन की एक विधि के रूप में इसके खुलेपन को बनाए रहते हैं न कि उसे हीगेलवादी प्रयोजनपरक संवृत्ति में ले जाकर इसे खंडित करते हैं।

पूंजीवाद के आंतरिक संबंध वस्तुत: उस खुलेपन का निर्माण करते हैं जिसे मार्क्स अपने द्वंद्वात्मक विचार में ग्रहण करते हैं। आंतरिक संबंध इस खुलेपन की ओर इसलिए ले जाते हैं क्योंकि द्वंद्वियों के बीच वे तनाव उत्पन्न कर देते हैं, या अधिक स्पष्टता से कहें तो उन लोगों के बीच तनाव जिनका सक्रिय अस्तित्व प्रत्येक द्वंद्वी का निर्माण करता है। यह तनाव निश्चयात्मकता और अनिश्चयात्मकता दोनों को ही बढ़ाता है। एक ओर, लोगों की गतिविधियों और उनकी वास्तविक परवृत्ति संबंध के बीच उनकी विशेष स्थिति से निर्धारित होती है, लेकिन दूसरी ओर संबंध का अंतिम परिणाम अनिर्धारित होता है। इसके अलावा जब लोग संबंध के भीतर अपनी निर्धारित स्थिति को चुनौती देना तय करते हैं तो वे इसे उस मात्रा तक क्षीण कर सकते हैं जिस मात्रा तक वे दृढ़ और तैयार होते हैं। हालांकि, अगर उनकी चुनौतिया अनालोचनात्मक होती हैं तो उनका प्रतिरोध उनकी स्थिति के प्रभावों को वस्तुत: अधिक तीव्र कर सकता है। ऐसा होने पर भी यह निश्चयात्मकता स्थिर या प्रकृति में प्रयोजनमूलक नहीं होती इसलिए प्रतिरोध के लिए हमेशा खुली रहती है। इसके अलावा जब लोग अपनी स्थिति के स्रोत के प्रति आलोचनात्मक ढंग से सचेत हो जाते हैं तो वे आलोचनात्मक/क्रांतिकारी आचरण में दीक्षित हो सकते हैं जिसके माध्यम से वे स्वयं को परिवर्तित कर सकते हैं साथ ही अपने अस्तित्व की दशाओं को भी बदल सकते हैं। दूसरे शब्दों में, नकारात्मक द्वंद्वों की आलोचनात्मक

उद्देश्यपरक गतिविधि के माध्यम से संबंध का उन्मूलन किया जा सकता है। दूसरी ओर दुर्भाग्य से—या अपेक्षाकृत विनाशकारी तरीके से—जब लोग आलोचनात्मक रूप से सचेत नहीं होते तो ये संबंध एक अधिक शत्रुतापूर्ण और पैशाचिक रूप से पतित अथवा परिवर्तित हो सकता है। परिणाम खुला होता है या, जैसा कि रोजा लक्जमबर्ग को यह चेतावनी देने का सम्मान दिया जाता है कि परिणाम या तो सुनिश्चित तौर पर प्रगतिशील सामाजिक संरचना में निकलेगा—यानी ममाजवाद/साम्यवाद में—या एक पतनशील रूप ग्रहण कर लेगा जैमे कि बर्बरतावाद। कहने की जरूरत नहीं है कि मार्क्स की यह अधिक खुली, अनिवार्य रूप से द्वंद्वात्मक समझ उस प्रकार के मार्क्सवाद के धुर विरोध में खड़ी होती है जो ऐतिहासिक और आर्थिक नियतवाद या 'अभद्र मार्क्सवाद' के दोनों या किसो भी एक रूप से संबंधित है।

मार्क्स प्राय: उन *रूपों और मध्यस्थताओं* का उल्लेख करते हैं जिन्हें वे पूंजीवाद के वस्तुगत या भौतिक यथार्थ को देखते हैं, और इन्हें अभिव्यक्त करने के लिए वे जिन प्रत्ययों या विचार रूपों का इस्तेमाल करते हैं वे उनके चिंतन और परिणामत: पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के उनके प्रस्तुतीकरण के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। मैं इन पदों का पहले ही प्रयोग कर चुकी हूं, लेकिन यहां दूसरे द्वंद्वात्मक प्रत्ययों का प्रयोग करके इनके अर्थो का सविस्तार प्रतिपादन कर मकती हूं। एकरूप द्वंद्वात्मक अंतर्विरोध या आंतरिक रूप से संबंधित 'द्वंद्वियों की अन्विति' का प्रत्यक्ष स्वरूप या मतही प्रकटीकरण होता है। इसको उस रूप या परिघटना के तौर पर विचारा जा मकता है जो अंतर्विरोध के 'खुलाव' से पैदा होते हैं—यानी वह रूप जो अंतर्विरोध या 'आंतरिक संबंध के होने के ढंग' या गत्यात्मक अस्तित्व को दरशाता है और उमे स्पष्ट करता है। क्योंकि मार्क्स के चेतना/आचरण के सिद्धांत के अनुसार हमारा सक्रिय अस्तित्व आंतरिक रूप मे हमारी आंतरिक चेतना से संबद्ध होता है, यह 'एक साथ अस्तित्व और चेतना के रूप' होते है (पोस्टोन, 1996, पृ. 220)।

हमें रूपों को प्रक्रियाओं के भाग या उनकी गत्यात्मकता में भी ममझने की जरूरत होती है। रूप, जैसा कि मैंने पहले बताया वे परिणाम हैं जो हमें पूजीवादी संबंधों के तात्कालिक अनुभव में दिखाई देते हैं। वे हमारे और अपने संबंधात्मक मूल के बीच मध्यस्थता या गति करते हैं, और बीच में खड़े भी रहते हैं। इसके अलावा कुछ रूप द्वंद्वियों के अपने संबंधों के अंदर गति करते हैं और उन्हें स्पष्टत: से बांधते या सटीकता से जोड़ते हैं, और वे एक आंतरिक संबंध या द्वंद्वात्मक अंतर्विरोध से दूसरे आंतरिक संबंध तक भी गति करते हैं। जब वे इनमें से किसी भी तरीके से गति करते हैं तो उन्हें द्वंद्वियों और संबंधों के बीच और परिणामत: हमारी

उनके बारे में अवधारणाओं के बीच मध्यस्थता करते हुए कहा जाता है। इसलिए उन्हें मध्यस्थताओं के रूप में संदर्भित किया जाता है। मार्क्स जिस तरीके से इन पदों का इस्तेमाल करते हैं वह इस बात का एक अच्छा उदाहरण है कि हमें किसी वस्तु या स्थिति को भिन्न दृष्टिकोण से देखने के लिए भिन्न प्रत्ययों का इस्तेमाल किस तरह करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, जब वह चाहते हैं कि हम किसी एक रूप की किसी एक विशेष गति पर विचार करें—इस गति या प्रक्रिया के एक भाग के रूप में इसकी संकल्पना के लिए—तो वे इसका संदर्भ एक रूप के बजाए एक मध्यस्थता के तौर पर देते हैं। एक विशेष रूप, *मूल्य रूप*, जिस पर विस्तार से चर्चा मैं बाद मे करूंगी, वस्तुतः पूंजीवाद के सभी सामाजिक संबधों और आदती व्यवहारों के बीच गति करता है और उन्हें एक अंतर्ग्रथित संजाल में बांध देता है जिसमे उस चीज का निर्माण होता है जिसे प्रायः पूंजीवादी समाज का सामाजिक ढाचा कहते हैं।

पूंजीवाद का सामाजिक ढांचा वस्तुत· एक मानवीय ढांचा है। मनुष्यों के संरचनावत संबंध जिनमें वे अपने भौतिक अस्तित्व को उत्पादित करने के लिए नियमित रूप से प्रवेश करते रहते हैं। संगठन और भौतिक ढांचे के साथ ही वैधानिक व्यवस्था के रूप जो ढांचे को वैधता प्रदान करते है मानवीय संबंधों की संरचना को पाटने या 'मजबूत' करने के लिए निर्मित किए जाते हैं लेकिन इस सरचना का वास्तविक या भौतिक तत्व मनुष्यों की दैनिक ऐंद्रिय गतिविधि होता है। प्रत्यक्षत· एक समाज के भीतर लोग अनेक सामाजिक संबंधों में प्रवेश करते हैं और उसका अंग बन जाते हैं, लेकिन कुछ ऐसे संबंध होते हैं जो एक विशेष समाजार्थिक संरचना की विशिष्ट चारित्रिक विशेषताओं का निर्माण करते हैं और उनका आधार बनते हैं और इस तरह इसे मानवीय सामाजिक संगठन का एक भिन्न और ऐतिहासिक रूप से विशिष्ट रूप प्रदान कर देते हैं। मूल्य रूप संबंधों में जो आधारभूत होते हैं उनसे पैदा होता है,[1] और यह एक हो समय में वह रूप होता है जो इस संबंध की अभिव्यक्ति होता है और इसे परस्पर जोड़ने वाला मध्यस्थ भी होता है। इसके अलावा यह उन नए संबंधों को भी परस्पर बांधता है जो पूंजीवादी सरचना का निर्माण करते हैं और इस तरह सर्वाधिकारिता की मध्यस्थता और रचना करते हैं। पूंजी गति में रहने वाला मूल्य है—एक आधारभूत बिंदु जिस पर मैं बाद में लौटूंगी (पोस्टोन, 1996, पृ. 263 265)।

दूसरे सामाजिक संबंध जो एक पूंजीवादी समाज में अंतर्निहित होते हैं : सिद्धांततः पूंजीवाद के लिए आवश्यक नहीं भी हो सकते और प्रायः इस सामाजिक रूप के पहले के होते हैं। हालांकि वे आवश्यक संबंधों को बनाए रखने में मदद करते हैं और उनको एक ऐसे रूप मे ढाल अथवा पुनर्निर्मित कर दिया जाता है जो

पूंजीवाद के लिए ऐतिहासिक रूप से विशिष्ट होता है। उदाहरण के लिए, वे सामाजिक संबंध जो लिंग और जातीय दमन के मूल में रहते हैं वे तकनीकी रूप से या सैद्धांतिक रूप से पूंजीवाद के लिए आवश्यक नहीं हैं और पूंजीवाद से पहले के हैं, लेकिन वे पूंजीवाद में श्रम के आवश्यक विभाजन को बनाए रखने में मदद करते हैं और इस तरह विशेष कालखंडों में पूंजीवाद के लिए लाभदायक या अपरिहार्य हो सकते हैं (वुड, 1995)। इनके अलावा वे सामान्यतः, हमेशा ही नहीं, अधिक गोपन रूप में अभिव्यक्त होते हैं जो कि पूंजीवाद का एक चारित्रिक गुण है।

पण्य और मुद्रा जैसे रूप समाज की सतह पर पकट होते हैं। वे ऐसी मध्यस्थता प्रतीत होते हैं या हैं जो पूंजीवाद के आंतरिक रूप से संबंधित सामाजिक संबंधों में लोगों के बीच गति करते हैं उन्हें और उनकी उत्पादन, वितरण और विभिन्न संबंधी गतिविधियों को जोड़ते और बांधते हैं—ऐसे संबंध जो लोगों को अलग करते हैं, हालांकि साथ ही द्वंद्व की स्थितियों के भीतर उन्हें साथ-साथ जोड़े भी रहते हैं। हमारे मूर्त अनुभव के किसी भी पहलू की तरह मनुष्यों की गतिविधि से वे प्रभावित किए जा सकते हैं। क्योंकि वे मानव गतिविधि के परिणाम होते हैं, इसलिए व्यवस्था की अनिश्चयात्मकता और उसके खुलेपन में वृद्धि करते हैं। वे पूर्व निर्धारित परिणामों के तकनीकी पुनरुत्पादन नहीं होते बल्कि उनमें मानवीय हस्तक्षेप द्वारा परिवर्तन लाने की अंतर्निहित क्षमता होती है। दुर्भाग्यवश, पूंजीवाद इतिहास में अब तक जिस प्रकार के परिवर्तन हुए हैं वे आंतरिक तौर पर संबद्ध द्वंद्वात्मक अंतर्विरोधों द्वारा तय किए गए क्षितिज या ढांचे की सीमा के भीतर ही घटे या तय हुए हैं। पूर्ण परिवर्तन या क्रांति श्रम और पूंजी के उस आंतरिक संबंध के उन्मूलन पर निर्भर करता है जो पूंजीवाद का सर्वाधिक आधारभूत द्वंद्वात्मक अंतर्विरोध है। साथ ही संपत्ति के उस मूल्य रूप के उन्मूलन की भी आवश्यकता होती है जो उस संबंध से पैदा होता है—संपत्ति का मूल्य रूप जो पूंजीवाद के लिए ऐतिहासिक तौर पर विशिष्ट होता है (पोस्टोन, 1996)। इसकी विस्तार से व्याख्या आगे इसी अध्याय में और तीसरे अध्याय में की जाएगी।

मार्क्स का विज्ञान और वैज्ञानिक चिंतन के बारे में एक अति विशिष्ट दृष्टिकोण है। वह वैज्ञानिक चिंतन को विचारधारा या विचारधारात्मक चिंतन से भिन्न मानते हैं। हालांकि विज्ञान की उनकी एक विशेष संकल्पना है, मगर यह असाधारण नहीं है बल्कि, वास्तव में, अधिकतम वैज्ञानिकों द्वारा की गई संकल्पना के जैसी ही है। हालांकि यह उससे मूलभूत रूप से भिन्न है जो सामान्य लोग विज्ञान और विशेषकर वैज्ञानिक 'नियमों' को लेकर सोचते हैं। विज्ञान का सहज बुद्धि विचार वैज्ञानिक ज्ञान को अपरिवर्तनीय सत्य के बतौर लेता है और वैज्ञानिक नियमों को इस सत्य के

सीधे और स्पष्ट सूत्रों के रूप में देखा जाता है। आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगशाला जो प्रौद्योगिकी और हर आकार-प्रकार के उपकरणें से भरी रहती है, प्रायः वैज्ञानिक प्रक्रिया के चारों ओर एक रहस्य सा रच देती है। आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों के विकास से पूर्व वैज्ञानिक चिंतन और प्रयोगधर्मिता उन अमृर्तनों (अमूर्त प्रत्यय) के सहारे संचालित किए जाते थे जिन्हें वैज्ञानिक मनन चिंतन और अवलोकन-निरीक्षण से प्राप्त करते थे। अधिकांश वैज्ञानिक इस प्रक्रिया को, कम से कम अपनी प्रयोगधर्मिता के प्रारंभिक चरणों में, आज भी जारी रखे हुए हैं। ये अमूर्तन परिकल्पनाओं या निष्फल परिकल्पनाओं के आधार पर निर्मित किए जाते हैं। ये भविष्य कथनवादी व्याख्याएं होते हैं जो प्रायः यह विचारते हैं कि किसी प्रत्यक्ष परिघटना के पीछे अप्रत्यक्ष या अदर्शनीय कारक क्या हो सकते हैं या उनका 'गोपन सारतत्व' क्या है। जैसा कि मैंने पहले कहा, आधुनिक वैज्ञानिक भी प्रायः इसी तरह काम करते हैं, और प्रायः प्रौद्योगिकी की मदद लेते हैं, और कभी कभी नई प्रौद्योगिकी के विकास को प्रभावित करते हैं जिससे उन्हें उनके अन्वेषणों में सहायता मिले। विज्ञान के सभी क्षेत्रों में, एक संपृक्त या सम्यक व्याख्या या ऐसी व्याख्या जो परीक्षणाधीन परिघटना के प्रत्येक पक्ष को स्पष्ट कर सके, प्रस्तुत करने का विचार काम करता है। जब भी संभव होता है, परिकल्पना या भविष्यकथन की परीक्षा के लिए प्रयोग किए जाते हैं या हर संभव तरीके से साक्ष्य जुटाए जाते हैं।

मार्क्स द्वारा पूंजी के 'गोपन अंतर्य' की खोज किए जाने के बाद आस्ट्रियाई महंत, ग्रेगोर मेन्डेल ने, अपने मठ के बगीचों में काम करते हुए जीन संबंधी अपने विचारों के परीक्षण के लिए मटर के पौधों के साथ प्रयोग करने की योजना बनाई कि किस तरह से उनके विभिन्न युग्म (संयोजन) उन दृष्टिगोचर आनुवंशिक चारित्रिक विशेषताओं को पैदा करते थे जो मटर के एक पौधे को दूसरे से भिन्न दरशाते थे। परिणामस्वरूप उन्होंने आधुनिक जीन सिद्धांत का आधार स्थापित किया—मेन्डेलिन सिद्धांत का। अणु और उनके आंतरिक घटक, जो जींस की तरह नंगी आंखों के लिए अगोचर या अदर्शनीय होते हैं, बहुत पहले से पदार्थ का मूल तत्व माने जाते रहे हैं। इस 'सत्य' की पुष्टि या प्रमाणीकरण के लिए वैज्ञानिक उपकरण हमारे पास बहुत बाद में आए। वैज्ञानिक सत्य और नियम मात्र तथ्य होने की अपेक्षा और भी बहुत कुछ होते हैं। वे उन घटनाओं और व्यवहारों में निहित व्यवस्थाबद्ध या नियमित प्रवृत्तियों के वक्तव्य होते हैं, जो कुछ निश्चित परिणामों की ओर ले जाते हैं। वे बताते हैं कि परिभाषित दशाओं के अंतर्गत—या बाह्य चरों की अनुपस्थिति में—कोई वस्तु कैसे कार्य करती है।

यही वह तरीका है जिसमें मार्क्स पद 'नियम' का प्रयोग करते हैं, और उन्होंने

अवलोकन और विचार की भी वैज्ञानिक प्रक्रिया अपनाई जो उन अमूर्तनों और परिकल्पनाओं के सूत्रीकरण की ओर ले जाती थी जिनकी पुष्टि अनुभवजन्य साक्ष्यों से की जा सकती थी। उनके बारे में यह जाना जाता है कि वह अपना अच्छा खासा समय ब्रिटिश म्यूजियम में आर्थिक आंकड़ों के अध्ययन विश्लेषण में लगाते थे, जिसने न केवल पूंजीवादी व्यवस्था के उनके अवलोकन को धार प्रदान की बल्कि उन्होंने इसका उपयोग पूंजीवाद की द्वंद्वात्मक संकल्पना को परखने के लिए साक्ष्य के तौर पर भी किया। इसके अलावा, इस साक्ष्य का प्रयोग उन्होंने पूंजीवाद कैसे कार्य करता है, उसकी अपनी विस्तृत व्याख्या के प्रतिपादन के लिए भी किया। जब नियमों की बात आती है तो वह लगातार उन प्रतिकारी प्रभावों की व्याख्या करते है या उनकी जो एक विशिष्ट प्रवृत्ति या नियम के व्यवस्थाबद्ध या नियमित प्रचालन के विरुद्ध काम करते हैं—प्राय: इसको विफल करने के लिए या इसे उलट देने के लिए (उदाहरण के लिए, मार्क्स, 1865; पृ 339-348)।

मार्क्स का विज्ञान, हालांकि, दूसरे विज्ञान से मूलभूत रूप से भिन्न है। वैज्ञानिक आम तौर पर यह मानकर चलते हैं कि जिस सत्य की उन्होंने खोज की है—सत्य जो अपनी सभी सामान्य स्थितियों और विशेषताओं के साथ हो—वह परा ऐतिहासिक सत्य होता है। यह वह सत्य होता है जो हमेशा से रहा है और हमेशा रहेगा लेकिन विचार और प्रयोग की वैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा उसकी खोज करनी होती है। कभी कभी, निश्चित रूप से इन सत्यों के बारे मे भविष्य कथन पहले से ही नहीं किया जा सकता बल्कि ये किसी प्रयोग या गलती करने और सीखने (ट्रायल एंड एरर) की प्रक्रिया के दौरान संयोगवश सामने आ जाते हैं। विज्ञान के बहुत से क्षेत्र विशेष रूप से जब से आइंस्टीन ने सापेक्षता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था विशिष्ट सत्यों की सम्यक प्रयोजनीयता के बारे में बहुत कम सकारात्मक या सुनिश्चित रह गए हैं, उदाहरण के लिए, कुछ वैज्ञानिकों को यह स्वीकार करना पड़ा कि प्रकाश जैसे कुछ प्राकृतिक घटक कुछ मामलों में अणु की तरह काम कर सकते हैं और दूसरे मामलो में तरंग की तरह काम कर सकते हैं। यह देखने के भिन्न दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। इसलिए वे स्वीकार करते हैं कि किसी विशिष्ट परिघटना को व्यापक विवेचना के लिए एक से अधिक सत्यों की आवश्यकता हो सकती है। इसके बावजूद जैसे ही *वे इस जटिल सत्य की खोज करते हैं तो यह सत्य भी एक परा ऐतिहासिक सत्य बन* जाता है। मार्क्स के सत्य और अन्वेषण पूंजीवाद के गोपन अंतर्य और उन नियमों और प्रवृत्तियों से संबंधित है जो इसकी गति और विकास को नियंत्रित करते हैं। इस तरह से वे पूंजीवाद के लिए ऐतिहासिक रूप से विशिष्ट होते हैं। दूसरे शब्दों में, वे केवल पूंजीवाद से ही संबंधित होते हैं और जैसे ही कभी पूजीवाद उन्मूलित हो जाता है या

अच्छे और बुरे के लिए आद्योपांत किसी दूसरी शक्ल में परिवर्तित हो जाता है तो ये नियम ऐतिहासिक दस्तावेजों की वस्तु बन जाएंगे। हालांकि, पूंजीवाद को समझने के लिए हमें विज्ञान की जरूरत होती है—यानी मार्क्स के द्वंद्वात्मक विज्ञान की—क्योंकि पूंजीवाद की संभावनाओं की दशाएं प्रत्यक्ष या पारदर्शी नहीं होतीं। पारदर्शिता न होने का एक मुख्य कारण है 'द्वंद्वियों को अन्विति'—आंतरिक संबंध या द्वंद्वात्मक अंतर्विरोध जो व्यवस्था को बनाते हैं और प्राय: स्थान और काल में विभाजित या पृथक होते हैं।

स्थान और काल में पृथक होने की यह स्थिति हमारे चिंतन के लिए समस्याएं खड़ी करती है जैसा कि मैंने भूमिका में उल्लेख किया था। मार्क्स के चेतना के सिद्धांत के अनुसार हमारे चेतन विचार हमारे अस्तित्व के सामाजिक संबंधों के भीतर हमारे सक्रिय ऐंद्रिय अनुभव से पैदा होते हैं। विचार और कार्य, या व्यवहार द्वंद्वियों की आंतरिक रूप से संबंधित अन्विति होते हैं। वे प्रचलित आचरण या विचार और व्यवहार की अन्विति होते हैं। हालांकि, क्योंकि वे गतिविधियां जो व्यवस्था को हमारी समझ के लिए हमारे लिए मूलभूत होती हैं, काल और स्थान में पृथक होती हैं, इसलिए इनमें घटने वाले संबंधों को पकड़ पाना कठिन होता है। इनके बारे में विचार करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति यह है कि इन्हें पृथक या विखंडित और विभाजित रूप में विचारा जाए। द्वंद्वियों को परस्पर संबंधित होने के तौर पर नहीं समझा जाता बल्कि उन्हें द्वैतपूर्ण द्वंद्वियों या विरोधी तत्वों के रूप में समझा जाता है और इस तरह विचार का एक द्वैतवादी या द्विभाजित चारित्रिक रूप तैयार हो जाता है। विचारधारात्मक चिंतन खंड खंड विचार करता है इस प्रयास में कि उन्हें सुसंबद्धता दी जा सके ताकि जो वस्तुएं जैसी प्रतीत होती हैं उन्हें वैध और प्राकृतिक बताया जा सके। ऐसा करते समय यह या तो जानबूझकर या अनायास आंतरिक संबंधों या पूंजीवाद के अंतर्य को ढंक देती है या छिपा देती है और इस तरह व्यवस्था के सत्य को भी ढंक या छिपा देती है जैसा कि मार्क्स ने *कैपीटल* के तीसरे खंड में कहा है कि विचारधारात्मक चिंतन उत्पादन के बुर्जुआ संबंधों के भीतर फंसे अभिकर्ताओं के मंसूबों को प्रकट करता है. .सारा विज्ञान उस सूरत में सतही साबित हो जाएगा यदि वस्तुओं का प्रकटीकृत रूप उनके अंतर्य से सीधा संबंधित मान लिया जाएगा (1865, पृ. 956)। यहां वास्तव में वे उन सारे तरीकों की बात कर रहे हैं जिनसे अंतर्य को छिपाया जाता है, लेकिन मैं इन प्रक्रियाओं पर बाद में विशेषकर तीसरे अध्याय में आऊंगी।

विचारधारा के इस संक्षिप्त विवेचन से हटने से पहले मैं बताना चाहती हूं कि जब विचारधारा की बात आती है तो बहुत से मार्क्सवादी अपना सूत्र मार्क्स के

बजाए लेनिन से ग्रहण करते हैं। वे इसका प्रयोग विचारों की एक व्यवस्था के उल्लेख के रूप में करते हैं, कभी-कभी उस ज्ञान के रूप में जो एक विशेष वर्ग के हितों को साधने के अर्थ में होता है, कभी कभी किसी की वर्ग स्थिति द्वारा अनुकूलित विश्व को देखने के एक तरीके के रूप में और कभी कभी इन दोनों ही रूपों में। मार्क्सवाद को इसलिए सर्वहारा वर्ग की विचारधारा और समाजवाद की विचारधारा के रूप में देखा जाता है। मार्क्स के लिए विचारधारा चिंतन का एक दोषपूर्ण तरीका है। यह विज्ञान के विपरीत है और इस प्रकार जैसा कि मैंने भूमिका में कहा था यह एक नकारात्मक प्रत्यय है और प्रायः उनकी समीक्षा का केंद्रबिंदु भी (लॉरियन, 1983; मार्क्स, 1863अ, 1863ब, 1863स, मार्क्स और एंगेल्स, 1846)। एक विशिष्ट विचारधारा को इंगित करने के लिए मार्क्स का प्रयोग करने से मार्क्स विस्मित और आहत हुए होते। मैं निश्चित तौर पर कह सकती हूं कि इस पद का एकमात्र सकारात्मक उपयोग जो मार्क्स को स्वीकार हो सकता था वह यही होता जो इसका प्रयोग द्वंद्वात्मक संकल्पना या विश्लेषण पर आधारित समीक्षा की एक विधि के रूप में किया जाता। दूसरे शब्दों में, उस तरीके से जिसका उल्लेख मार्क्स के संदर्भ में ग्राम्शी ने किया है या जिसे ग्राम्शी की प्रयोक्ति भी कह सकते हैं—'आचरण का दर्शन'—एक विचारधारा के रूप में। जैसा कि मैंने पहले भी उल्लेख किया है (उदाहरण के लिए, ओलमान, 1999) ग्राम्शी के लिए विचारधारा गवेषणा की एक विधि थी या विचारों के उद्‌गम के विश्लेषण की (ग्राम्शी, 1971, पृ. 370 371) और इसी तरह से उन्होंने इस शब्द को मार्क्सवाद के साथ जोड़कर प्रयोग किया। तब भी मार्क्स शायद प्रतिवाद करते जैसा कि उन्होंने एक अवसर पर कहा कि स्वयं मार्क्सवादी नहीं हैं। इसके बावजूद इन दोनों पदों का सामान्य प्रयोग—यानी विचारधारा और मार्क्सवाद—लेनिन का है मार्क्स का नहीं। यही वजह है कि मैं विचारधारा के नकारात्मक प्रत्यय पर लगातार जोर देती हूं और जहां तक संभव हो मार्क्सवाद पद के प्रयोग से बचने की कोशिश करती हूं।

आंतरिक संबंध : पूंजीवाद का अंतर्य या सारतत्व या 'सामान्यतः पूंजी'

कैपीटल के पहले खंड में मार्क्स पूंजीवाद की अपनी व्याख्या की शुरुआत पण्य—वह मूर्त रूप पूंजीवाद का भ्रूणीय 'अंतर्य' जिसमें सर्वप्रथम प्रकट होता है—के एक विश्लेषण से करते हैं। पण्य प्रकृति की रचना नहीं हैं बल्कि मानवीय इतिहास के भीतर मनुष्यों की गतिविधि से पैदा होता है। पहले यह समाज के उपांतों पर लोगों की उत्पादक गतिविधियों के एक विशेष प्रकार के उत्पाद—किसी भी सूरत में अति सामान्य परिणाम नहीं—के रूप में अस्तित्व में आया था। वस्तुतः केवल पूंजीवाद

के अंतर्गत ही पण्य एक पूर्ण विकसित और प्रभुत्वकारी रूप ग्रहण करता है (मार्क्स, 1867, पृ. 174 पाद टिप्पणी)। इसका अंतर्य उस समाज का दोनों ही होता है, बीजाणु या पूर्व शर्त और इसका परिणाम या परिणति। खंड एक अंतिम पृष्ठों में (यानी परिशिष्ट में जिसे *रजल्टेट* के नाम से जाना जाता है) वह इस उपयोगी सारांश को प्रस्तुत करते हैं :

> हम पण्य को मानते हैं ... एक आधारिका (पूर्व शर्त) और हम पण्य से आगे बढ़ते हैं ... इसके सहजतम रूप में। दूसरी ओर, हालांकि, पण्य है . पूंजीवादी उत्पादन का परिणाम ... केवल पूंजीवादी उत्पादन के आधार पर ही पण्य उत्पाद का सामान्य रूप ग्रहण करता है (मार्क्स, 1866, पृ 1060)।

मार्क्स स्पष्ट करते हैं कि पण्य मानव श्रम के उन उत्पादों से भिन्न है जिनका उपयोग उनके द्वारा किया जाता है जो उनका उत्पादन करते हैं और विकल्पत: दूसरे उपयोगी उत्पाद के बदले जिनका वस्तु व्यापार किया जाता है। पण्य का दोहरा या द्वंद्वात्मक चरित्र होता है। यह उपयोगी मूल्य और मूल्य दोनों ही होता है (मार्क्स, 1867 पृ 152)। उपयोगी मूल्य या मानव श्रम के उत्पादन अनिवार्य तौर पर पण्य नहीं होते।. वे भौतिक मूल्य होते हैं जो किसी भी प्रकार के समाज में बने रह सकते हैं। एक उत्पाद के पण्य बनने के लिए इसका उत्पादन किसी अन्य के लिए होना चाहिए और विनिमय के माध्यम से इसका हस्तांतरण किसी अन्य को होना चाहिए। जब ऐसा होता है तो मूल्य विनिमय मूल्य हो जाता है। उपयोगी मूल्य और विनिमय मूल्य दोनों ही सामाजिक मूल्य हैं और इसलिए ऐतिहासिक रूप से विशिष्ट सामाजिक संबंधों से उत्पन्न होते हैं (पृ. 131)। मार्क्स उस ऐतिहासिक प्रक्रिया की व्याख्या करते हैं जिससे गुजरकर मानव श्रम के उत्पाद पण्य में बदल जाते हैं—कि किस तरह, व्यापार के विकास के साथ, उत्पाद दोहरी प्रकृति ग्रहण कर लेते हैं और फिर पण्यों में अंतरित हो जाते हैं।

जैसा कि मैंने पहले संकेत किया था, पण्यों का व्यापार मूल रूप से एक ऐसी गतिविधि था जो समाजों के उपांतों पर शुरू हुई। यह व्यापार दो समाजों के बीच होता था बजाए उसी एक विशिष्ट समाज के अंदर होने के जिसमें उपयोग और भेंट चढ़ावे के लिए उत्पादन इतिहास के एक लंबे कालखंड तक जारी रहा (मार्क्स, 1867, पृ. 170-173)। तदनंतर, समाजों के बीच होने वाला बाह्य व्यापार मात्रा और क्षेत्र में बढ़ता गया, और समाजों के भीतर के उत्पाद भी—इसकी प्रतिक्रिया में—पण्य हो गए (पृ. 182)। इससे पूर्व आंतरिक व्यापार दो निजी उत्पादकों के बीच मौखिक समझौतों के माध्यम से होता था और इसमें उत्पादों और सेवाओं का

व्यापार माल के रूप में अपेक्षित होता था। यद्यपि इस प्रकार का व्यापार कुछ काल तक पण्यों के विनिमय के साथ-साथ चलता रहता होगा, मगर उत्पादकों के सायास विनिमय के उत्पादन बढ़ाना शुरू कर दिया था, और परिणामस्वरूप पण्यों का उत्पादन और पण्यों का विनिमय पूरे समाज में फैलता चला गया (मार्क्स, 1867, पृ. 182)। पण्य विनिमय के उपयोगी-मूल्यों या उत्पादों से भिन्न हो सकते हैं मगर हमें उनकी आंतरिक प्रकृति को अधिक निकटता से समझने की आवश्यकता है, जैसा कि मार्क्स ने किया, ताकि यह समझा जा सके कि वे क्यों और कैसे भिन्न होते हैं। इसलिए, पण्य रूप के विकास के मार्क्स के विश्लेषण को मैं संक्षेप में फिर दोहरा देती हूं—उस ऐतिहासिक प्रक्रिया को जिसके माध्यम से इस रूप की आंतरिक प्रकृति अस्तित्व में आई और तदनंतर पूंजीवाद के उदय की संवाहक बनी।

किसी विनिमय को संपन्न करने के लिए, मूल उत्पादकों को उपयोगी मूल्य का आधिक्य या बेशी उत्पादित करना होता था—अपनी स्वयं की आवश्यकताओं से अधिक। और यह सुनिश्चित करने के लिए कि इनका विनिमय समतुल्य हो और साथ ही इसे किसी विवाद या सौदेबाजी में पड़ने से रोकने के लिए किसी एक ऐसी संपत्ति को चिह्नित करना आवश्यक हो गया जिसमें सभी उपयोगी मूल्यों की साझेदारी हो। क्योंकि सभी उपयोगी मूल्य उपभोग के अर्थ में एक-दूसरे से भिन्न थे इसलिए उपयोग मूल्य का प्रयोग विनिमय समतुल्यता की स्थापना के लिए नहीं किया जा सकता था। एक संपत्ति जिसमें वे सब भागीदारी करते थे वह यह थी कि वे सब मानव-श्रम का परिणाम थे। श्रम के वास्तविक प्रकार, उनके मूर्त रूप, भी वस्तुओं के निर्माण से लेकर, जमीन की कमाई, पशुओं को पालने, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन आदि तक, भिन्न थे। इसलिए समतुल्यता श्रम के विशिष्ट प्रकारों से, या जिसे मार्क्स 'मूर्त श्रम' कहते हैं (1867, पृ. 128), स्थापित नहीं की जा सकती थी। सामान्यत: श्रम, या 'अमूर्त श्रम' एकमात्र ऐसा कारक है जिसमें सभी पण्य भागीदारी करते हैं—श्रम उनके मूल्य का सार है, लेकिन यह श्रम का परिमाण है जो उन्हें विनिमयशील बनाता है और परिमाण श्रमसमय से मापा जाता है (पृ. 128, 131, 141, 308) और उस समय को समान माप की इकाइयों में विभाजित किया जा सकता है। श्रमसमय की एकमात्र वह संपत्ति था जो हर पण्य में अंतर्निहित थी—उपयोगी मूल्य से आंतरिक तौर पर संबद्ध—जिसे समतुल्यता स्थापित करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता था, और इसलिए पण्य के विनिमय मूल्य की स्थापना के लिए आधार बतौर इसका प्रयोग हो सकता था।

मूर्त श्रम के प्रतिकक्ष, मार्क्स, जैसा कि मैंने पहले बताया, अमूर्त श्रम या अधिक सुस्पट तरीके से अमूर्त सामाजिक श्रम को रखते हैं (पृ. 308)। जब पण्यों का